आगम संस्थान ग्रन्थमाला : ८

सम्पादक
प्रो० सागरमल जैन

समियाए धम्मे आरिएहिं पव्वइये

दीवसागरपण्णत्तिपइण्णयं

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति-प्रकीर्णक)

डॉ० सुरेश सिसोदिया

सव्वत्थेसु समं चरे
सव्वं जगं तु समयाणुपेही
पियमप्पियं कस्स वि नो करेज्जा
सम्मदंसी न करेइ पावं
सम्मत्त दिट्ठि सया अमूढे
समियाए मुनि होइ

294.482
पुण्य-दी

आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान
उदयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम संस्थान ग्रन्थमाला : ८

सम्पादक
प्रो० सागरमल जैन

दीवसागरपण्णत्तिपइण्णयं

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति-प्रकीर्णक)

(मुनि पुण्यविजय जी द्वारा संपादित मूलपाठ)

अनुवादक
डॉ० सुरेश सिसोदिया
शोध अधिकारी
आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान
उदयपुर (राज०)

भूमिका
प्रो० सागरमल जैन
डॉ० सुरेश सिसोदिया

आगम, अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान
उदयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

© प्रकाशक :
आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान
पद्मिनी मार्ग, राजस्थान पत्रिका कार्यालय के पास
उदयपुर (राज०) ३१३००१

संस्करण : प्रथम १९९३

मूल्य : रु० ४०.००

Dīva-Sāgarapaṇṇatti Paiṇṇayaṁ
Hindi Translation by
Dr. Suresh Sisodiya

Edition : First 1993

Price : Rs. 40-00

मुद्रक : वर्द्धमान मुद्रणालय, जवाहरनगर, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

अर्द्धमागधी जैन आगम-साहित्य भारतीय संस्कृति और साहित्य की अमूल्य निधि है। दुर्भाग्य से इन ग्रन्थों के अनुवाद उपलब्ध न होने के कारण जनसाधारण और विद्वद्वर्ग दोनों ही इनसे अपरिचित हैं। आगम ग्रन्थों में अनेक प्रकीर्णक प्राचीन और अध्यात्मप्रधान होते हुए भी अप्राप्त से रहे हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि पूज्य मुनि श्री पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित इन प्रकीर्णक ग्रन्थों के मूलपाठ का प्रकाशन श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से हो चुका है, किन्तु अनुवाद के अभाव में जनसाधारण के लिए ये ग्राह्य नहीं बन सके। इसी कारण जैन विद्या के विद्वानों की समन्वय समिति ने अनुदित आगम ग्रन्थों और आगमिक व्याख्याओं के अनुवाद के प्रकाशन को प्राथमिकता देने का निर्णय लिया और इसी सन्दर्भ में प्रकीर्णकों के अनुवाद का कार्य आगम संस्थान को दिया गया। संस्थान द्वारा अब तक देवेन्द्रस्तव, तन्दुलवैचारिक, चन्द्रवेध्यक एवं महाप्रत्याख्यान नामक चार प्रकीर्णक अनुवाद सहित प्रकाशित किये जा चुके हैं।

हमें प्रसन्नता है कि संस्थान के शोध अधिकारी डॉ० सुरेश सिसोदिया ने 'द्वीपसागरप्रज्ञप्ति-प्रकीर्णक' का अनुवाद सम्पूर्ण किया। प्रस्तुत ग्रन्थ की सुविस्तृत एवं विचारपूर्ण भूमिका संस्थान के मानद निदेशक प्रो० सागरमल जी जैन एवं डॉ० सुरेश सिसोदिया ने लिखकर ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान की है, इस हेतु हम उनके कृतज्ञ हैं।

हम संस्थान के मार्गदर्शक प्रो० कमलचन्द जी सोगानी, मानद सह निदेशिका डॉ० सुषमा जी सिंघवी एवं मन्त्री श्री वीरेन्द्र सिंह जी लोढा के भी आभारी हैं, जो संस्थान के विकास में हर सम्भव सहयोग एवं मार्गदर्शन दे रहे हैं। डॉ० सुभाष कोठारी भी संस्थान को प्रकीर्णक अनुवाद योजना में संलग्न हैं अतः उनके प्रति भी आभारी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन हेतु श्रीमती जीवणीदेवी कांकरिया की पुण्य स्मृति में उनके सुपौत्र श्री दिलीप कांकरिया ने अर्थ सहयोग प्रदान किया है, एतदर्थ हम उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। ग्रन्थ के सुन्दर एवं सत्वर मुद्रण के लिए हम वर्द्धमान मुद्रणालय के भी आभारी हैं।

गणपतराज बोहरा
अध्यक्ष

सरदारमल कांकरिया
महामंत्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत प्रकाशन के अर्थ सहयोगी

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु गोगोलाव निवासी श्रीमती जीवणीदेवी कांकरिया धर्मपत्नी स्व० सेठ मुकनमलजी कांकरिया की पुण्य-स्मृति में उनके सुपौत्र श्री दिलीप कांकरिया ने अर्थ सहयोग प्रदान किया है।

श्रीमती जीवणीदेवी कांकरिया आचार्य श्री नानालालजी म० सा० की परमभक्त एवं धर्मनिष्ठ सुश्राविका थीं। शिक्षा, सेवा और चिकित्सा सम्बन्धी कोई भी शुभ कार्य हो, उसमें आप उदारहृदय से अर्थ सहयोग प्रदान करती थीं। आपके नाम से रतलाम में महिला उद्योग मन्दिर का निर्माण कराया गया था, उसमें आपने एक लाख रुपये से भी अधिक का अनुदान प्रदान किया था।

आपके युवा पौत्र श्री दिलीप कांकरिया उदारहृदयी एवं मृदु व्यवहारी हैं। आप समाज के सभी कार्यों में सदैव उदारतापूर्वक अर्थ सहयोग प्रदान करते हैं। समाज को आपसे भारी आशाएँ हैं।

संस्थान श्री कांकरिया सा० के योगदान हेतु सदैव आभारी रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रम

विषय		गाथा क्रमांक	पृ०/क्रमांक
भूमिका			१–७६
मानुषोत्तर पर्वत	....	१-१८	३–५
नलिनोदक आदि सागर	....	१९-२४	५–७
नन्दीश्वर द्वीप	....	२५	७
अंजन पर्वत और उनके ऊपर जिनदेव के मंदिर	....	२६-४७	७-११
दधिमुख पर्वत और उनके ऊपर जिनदेव के मंदिर	....	४८-५१	११
अंजन पर्वतों की पुष्करिणियाँ	....	५२-५७	१३
रतिकर पर्वत और शक्र ईशान देव-देवियों की राजधानियाँ	....	५८-७०	१३-१५
कुण्डल द्वीप		७१	१५
कुण्डल पर्वत	....	७२–७५	१५
कुण्डल पर्वत के ऊपर सोलह शिखर	....	७६-८३	१७
कुण्डल पर्वत के शिखरों पर सोलह नागकुमार देव	....	८४-८६	१७
कुण्डल पर्वत के भीतर सौधर्म ईशान लोकपालों की राजधानियाँ	....	८७-९७	१९
कुण्डल पर्वत के भीतर शक्र ईशान अग्रमहिषियों की राजधानियाँ	....	९८-१०१	२१
कुण्डल पर्वत के बाहर त्रायस्त्रिंशकों और उनकी अग्रमहिषियों की राजधानियाँ	....	१०२-१०९	२१-२३
कुण्डल समुद्र	....	११०	२३
रुचक द्वीप	....	१११	२३
रुचक पर्वत	....	११२-११६	२३
रुचक पर्वत पर शिखर	....	११७-१२६	२३-२५
दिशाकुमारियाँ और उनके स्थान	....	१२७-१४२	२५-२९
दिग्हस्ति शिखर	....	१४३-१४८	२९-३१
रतिकर पर्वत पर शक्र ईशान सामानिक देवों के उत्पादक पर्वत और राजधानियाँ	...	१४९-१५५	३१-३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप आदि द्वीपों और समुद्रों के अधिपति देव १५६-१६५ ३३-३७
तिगिञ्छि पर्वत १६६-१७३ ३७
चमरचंचा राजधानी १७४-२२५ ३९-४७
परिशिष्ट
(१) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति प्रकीर्णक की गाथानुक्रमणिका ४८-५२
(२) सहायक ग्रन्थ सूची ५३-५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीवसागरपण्णत्तिपइण्णयं

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति-प्रकीर्णक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

प्रत्येक धर्म परम्परा में धर्म ग्रन्थ का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। हिन्दुओं के लिए वेद, बौद्धों के लिए त्रिपिटक, पारसियों के लिए अवेस्ता, ईसाइयों के लिए बाइबिल और मुसलमानों के लिए कुरान का जो स्थान और महत्त्व है, वही स्थान और महत्त्व जैनों के लिए आगम साहित्य का है। यद्यपि जैन परम्परा में आगम न तो वेदों के समान अपौरुषेय माने गये हैं और न ही बाइबिल और कुरान के समान किसी पैगम्बर के माध्यम से दिया गया ईश्वर का सन्देश, अपितु वे उन अर्हंतों एवं ऋषियों की वाणी का संकलन हैं, जिन्होंने साधना और अपनी आध्यात्मिक विशुद्धि के द्वारा सत्य का प्रकाश पाया था। यद्यपि जैन आगम साहित्य में अङ्ग सूत्रों के प्रवक्ता तीर्थंकरों को माना जाता है, किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि तीर्थंकर भी मात्र अर्थ के प्रवक्ता हैं, दूसरे शब्दों में वे चिन्तन या विचार प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें शब्द रूप देकर ग्रन्थ का निर्माण गणधर अथवा अन्य प्रबुद्ध आचार्य या स्थविर करते हैं।[1]

जैन परम्परा हिन्दू-परम्परा के समान शब्द पर उतना बल नहीं देती है। वह शब्द को विचार की अभिव्यक्ति का मात्र एक माध्यम मानती है। उसकी दृष्टि में शब्द नहीं, अर्थ (तात्पर्य) ही प्रधान है। शब्दों पर अधिक बल न देने के कारण ही जैन-परम्परा के आगम ग्रन्थों में यथाकाल भाषिक परिवर्तन होते रहे और वेदों के समान शब्द रूप में वे अक्षुण्ण नहीं बने रह सके। यही कारण है कि आगे चलकर जैन आगम साहित्य— अर्द्धमागधी आगम-साहित्य और शौरसेनी आगम-साहित्य ऐसी दो शाखाओं में विभक्त हो गया। इनमें अर्द्धमागधी आगम-साहित्य न केवल प्राचीन है अपितु वह महावीर की मूलवाणी के निकट भी है। शौरसेनी आगम-साहित्य का विकास भी अर्द्धमागधी आगम साहित्य के प्राचीन स्तर के इन्हीं आगम ग्रंथों के आधार पर हुआ है। अतः अर्द्धमागधी आगम-साहित्य शौरसेनी आगम-साहित्य का आधार भी है। यद्यपि यह अर्द्धमागधी आगम-साहित्य भी महावीर के काल से लेकर वीर निर्वाण संवत्

---

१. 'अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा' आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ९२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९८० या ९९३ की वलभी की वाचना तक लगभग एक हजार वर्ष की सुदीर्घ अवधि में अनेक बार संकलित और सम्पादित हुआ है। अतः इस अवधि में उसमें कुछ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन भी हुआ है और उसका कुछ अंश कालकवलित भी हो गया है।

प्राचीन काल में यह अर्द्धमागधी आगम साहित्य—अंग-प्रविष्ट और अंगबाह्य ऐसे दो विभागों में विभाजित किया जाता था। अंग प्रविष्ट में ग्यारह अंग आगमों और बारहवें दृष्टिवाद को समाहित किया जाता था। जबकि अंगबाह्य में इनके अतिरिक्त वे सभी आगम ग्रन्थ समाहित किये जाते थे, जो श्रुतकेवली एवं पूर्वधर स्थविरों की रचनाएँ मानी जाती थीं। पुनः इस अंगबाह्य आगम-साहित्य को भी नन्दीसूत्र में आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त ऐसे दो भागों में विभाजित किया गया है। आवश्यक व्यतिरिक्त के भी पुनः कालिक और उत्कालिक ऐसे दो विभाग किये गये हैं।नन्दीसूत्र का यह वर्गीकरण निम्नानुसार है—

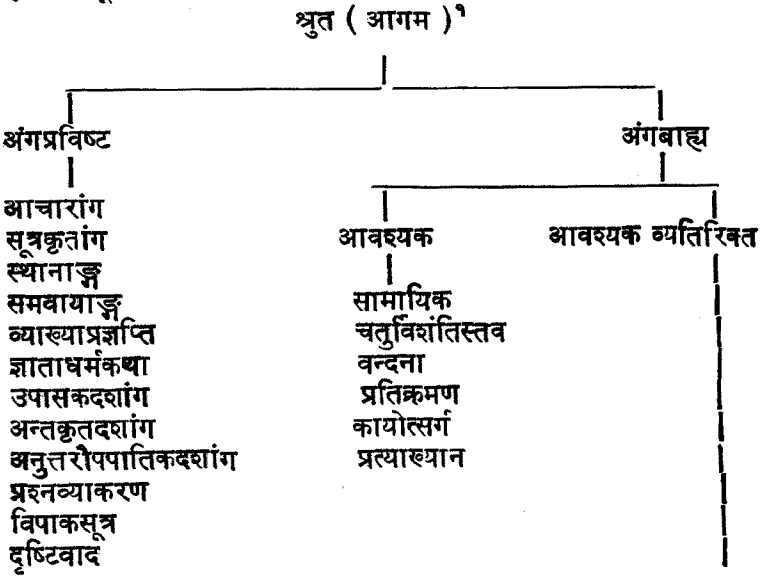

१. नन्दीसूत्र—सं० मुनि मधुकर, सूत्र ७६, ७९-८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालिक		उत्कालिक	
उत्तराध्ययन	वैश्रमणोपपात	दशवैकालिक	सूर्यप्रज्ञप्ति
दशाश्रुतस्कन्ध	वेलन्धरोपपात	कल्पिकाकल्पिक	पौरुषीमंडल
कल्प	देवेन्द्रोपपात	चुल्लकल्पश्रुत	मण्डलप्रवेश
व्यवहार	उत्थानश्रुत	महाकल्पश्रुत	विद्याचरण विनिश्चय
निशीथ	समुत्थानश्रुत	औपपातिक	गणिविद्या
महानिशीथ	नागपरिज्ञापनिका	राजप्रश्नीय	ध्यानविभक्ति
ऋषिभाषित	निरयावलिका	जीवाभिगम	मरणविभक्ति
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	कल्पिका	प्रज्ञापना	आत्मविशोधि
द्वीपसागरप्रज्ञप्ति	कल्पावतंसिका	महाप्रज्ञापना	वीतरागश्रुत
चन्द्रप्रज्ञप्ति	पुष्पिता	प्रमादाप्रमाद	संलेखणाश्रुत
क्षुल्लिकाविमान-प्रविभक्ति	पुष्पचूलिका	नन्दीसूत्र	विहारकल्प
महल्लिकाविमान-प्रविभक्ति	वृष्णिदशा	अनुयोगद्वार	चरणविधि
अंगचूलिका		देवेन्द्रस्तव	आतुरप्रत्याख्यान
वग्गचूलिका		तन्दुलवैचारिक	महाप्रत्याख्यान
विवाहचूलिका		चन्द्रवेध्यक	
अरुणोपपात			
वरुणोपपात			
गरुड़ोपपात			
धरणोपपात			

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्दीसूत्र में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का उल्लेख अंगबाह्य, आवश्यक-व्यतिरिक्त कालिक आगमों में हुआ है। पाक्षिकसूत्र में आगमों के वर्गीकरण की जो शैली अपनायी गयी है उसमें नाम और क्रम में कुछ भिन्नता है। उसमें भी द्वीपसागरप्रज्ञप्ति को कालिक आगमों में ग्यारहवाँ स्थान मिला है। इसके अतिरिक्त आगमों के वर्गीकरण की एक प्राचीन शैली हमें यापनीय परम्परा के शौरसेनी आगम 'मूलाचार' में भी मिलती है। मूलाचार आगमों को चार भागों में वर्गीकृत करता है[1]—(१) तीर्थंकर-कथित (२) प्रत्येकबुद्ध-

१. मूलाचार—भारतीय ज्ञानपीठ-गाथा २७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथित (३) श्रुतकेवली कथित और (४) पूर्वधर-कथित। पुनः मूलाचार में इन आगमिक ग्रन्थों का कालिक और उत्कालिक के रूप में वर्गीकरण किया गया है किन्तु मूलाचार में कहीं भी द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का नाम नहीं आया है। अतः यापनीय परम्परा इसे किस वर्ग में वर्गीकृत करती थी, यह कहना कठिन है।

वर्तमान में आगमों के अंग, उपांग, छेद, मूलसूत्र, प्रकीर्णक आदि विभाग किये जाते हैं। यह विभागीकरण हमें सर्वप्रथम विधिमार्गप्रपा (जिनप्रभ-१३वीं शताब्दी) में प्राप्त होता है।[1] सामान्यतया प्रकीर्णक का अर्थ विविध विषयों के संकलित ग्रन्थ ही किया जाता है। नन्दीसूत्र के टीकाकार मलयगिरि ने लिखा है कि तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट श्रुत का अनुसरण करके श्रमण प्रकीर्णकों की रचना करते थे। परम्परानुसार यह भी मान्यता है कि प्रत्येक श्रमण एक-एक प्रकीर्णक की रचना करता था। समवायांग सूत्र में "चोरासीइं पण्णग सहस्साइं पण्णत्ता" कहकर ऋषभदेव के चौरासी हजार शिष्यों के चौरासी हजार प्रकीर्णकों का उल्लेख किया है।[2] महावीर के तीर्थ में चौदह हजार साधुओं का उल्लेख प्राप्त होता है। अतः उनके तीर्थ में प्रकीर्णकों की संख्या भी चौदह हजार मानी गयी है। किन्तु आज प्रकीर्णकों की संख्या दस मानी जाती है।

ये दस प्रकीर्णक निम्न हैं—

(१) चतुःशरण (२) आतुर प्रत्याख्यान (३) संस्तारक (४) चन्द्रवेध्यक (५) गच्छाचार (६) तन्दुलवैचारिक (७) देवेन्द्रस्तव (८) गणिविद्या (९) महाप्रत्याख्यान और (१०) मरण विधि।

मुनि पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित पइण्णयसुत्ताइं में दस प्रकीर्णकों के नाम निम्नानुसार हैं[3] —

(१) चतुःशरण (२) आतुरप्रत्याख्यान (३) भक्तपरिज्ञा (४) संस्तारक (५) तन्दुलवैचारिक (६) चन्द्रवेध्यक (७) देवेन्द्रस्तव (८) गणिविद्या (९) महाप्रत्याख्यान और (१०) वीरस्तव

दस प्रकीर्णकों को श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय आगमों की श्रेणी में मानता है। परन्तु प्रकीर्णक नाम से अभिहित इन ग्रन्थों का संग्रह किया जाय तो निम्न बाईस नाम प्राप्त होते हैं—

---

१. विधिमार्गप्रपा—पृष्ठ ५५।
२. समवायांग सूत्र—मुनि मधुकर–८४वाँ समवाय।
३. पइण्णयसुत्ताइं, प्रस्तावना पृष्ठ २०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) चतुःशरण (२) आतुरप्रत्याख्यान (३) भक्तपरिज्ञा (४) संस्तारक (५) तंदुलवैचारिक (६) चन्द्रवेध्यक (७) देवेन्द्रस्तव (८) गणिविद्या (९) महाप्रत्याख्यान (१०) वीरस्तव (११) ऋषिभाषित (१२) अजीवकल्प (१३) गच्छाचार (१४) मरणसमाधि (१५) तित्थोगालि (१६) आराधना-पताका (१७) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (१८) ज्योतिष्करण्डक (१९) अंगविद्या (२०) सिद्धप्राभृत (२१) सारावली और (२२) जीवविभक्ति।[1]

इसके अतिरिक्त एक ही नाम के अनेक प्रकीर्णक भी उपलब्ध होते हैं, यथा—'आउर पच्चक्खान' के नाम से तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

इनमें से नन्दी और पाक्षिक के उत्कालिक सूत्रों के वर्ग में देवेन्द्रस्तव, तंदुलवैचारिक, चन्द्रवेध्यक, गणिविद्या, मरणविभक्ति, मरणसमाधि, महाप्रत्याख्यान—ये सात नाम पाये जाते हैं और कालिकसूत्रों के वर्ग में ऋषिभाषित और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ये दो नाम पाये जाते हैं। इस प्रकार नन्दी एवं पाक्षिक सूत्र में नौ प्रकीर्णकों का उल्लेख मिलता है।[2]

प्रकीर्णकों की संख्या और नामों को लेकर जैनाचार्यों में परस्पर मत-भेद देखा जाता है। दस प्रकीर्णकों की सभी सूचियों में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का उल्लेख नहीं है, किन्तु नन्दीसूत्र की कालिक सूत्रों की सूची में इसका उल्लेख होना इस बात का प्रमाण है कि यह आगम रूप में मान्य एक प्राचीन ग्रन्थ है। श्वेताम्बर आचार्य जिनप्रभ ने विधिमार्गप्रपा नामक ग्रन्थ में निम्न चौदह प्रकीर्णकों का उल्लेख किया है[3]—

(१) देवेन्द्रस्तव, (२) तंदुलवैचारिक, (३) मरण समाधि, (४) महा-प्रत्याख्यान, (५) आतुर प्रत्याख्यान, (६) संस्तारक, (७) चन्द्रकवेध्यक, (८) भक्तपरिज्ञा, (९) चतुःशरण, (१०) वीरस्तव, (११) गणिविद्या, (१२) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, (१३) संग्रहणी और (१४) गच्छाचार। इनमें द्वीप-सागरप्रज्ञप्ति का उल्लेख होना यह सिद्ध करता है कि उसे एक प्रकीर्णक के रूप में मान्यता प्राप्त थी।

---

१. पइण्णयसुत्ताइं, पृष्ठ १८।

२. नन्दीसूत्र—मधुकर मुनि, पृष्ठ ८०-८१।

३. देवंदत्थयं–तंदुलवेयालिय–मरणसमाहि – महापच्चक्खाण–आउरपच्चक्खाण–संथारय–चंदाविज्झय–चउसरण – वीरत्थय–गणिविज्जा–दीवसागरपण्णत्ति–संगहणी–गच्छायारं–इच्चाइपइण्णगाणि इक्किक्केण निव्विएण वच्चंति।
(विधिमार्गप्रपा, पृष्ठ ५७-५८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधिमार्गप्रपा में उल्लिखित इन प्रकीर्णकों के नामों में 'द्वीपसागर-प्रज्ञप्ति' और 'संग्रहणी' को भिन्न-भिन्न प्रकीर्णक बतलाया गया है जबकि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का नामोल्लेख द्वीपसागरप्रज्ञप्ति संग्रहणी गाथा (दीव-सागरपण्णत्ति संगहणी गाहाओ) रूप में मिलता है। हमारी दृष्टि से विधि-मार्गप्रपा में सम्पादक की असावधानी से यह गलती हुई है। वस्तुतः 'द्वीपसागरप्रज्ञप्ति' और 'संग्रहणी' दो भिन्न प्रकीर्णक नहीं होकर एक ही प्रकीर्णक है। विधिमार्गप्रपा में यह भी बतलाया गया है कि द्वीपसागर-प्रज्ञप्ति का अध्ययन तीन कालों में तीन आयम्बिलों के द्वारा होता है।[1] पुनः इसी ग्रन्थ में आगे चार कालिक प्रज्ञप्तियों का उल्लेख है, जिनमें द्वीपसागर प्रज्ञप्ति भी समाहित है। टिप्पणी में इन चारों प्रज्ञप्तियों के नामों का उल्लेख है।[2]

यद्यपि आगमों की शृंखला में प्रकीर्णकों का स्थान द्वितीयक है, किन्तु यदि हम भाषागत प्राचीनता और विषयवस्तु की दृष्टि से विचार करें तो प्रकीर्णक, कुछ आगमों की अपेक्षा भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। प्रकीर्णकों में ऋषिभाषित आदि ऐसे प्रकीर्णक हैं, जो उत्तराध्ययन और दशवैकालिक जैसे प्राचीन स्तर के आगमों की अपेक्षा भी प्राचीन हैं।[3]

ग्रन्थ में प्रयुक्त हस्तलिखित प्रतियों का परिचय

मुनि श्री पुण्यविजयजी ने इस ग्रन्थ के पाठ निर्धारण में निम्न प्रतियों का प्रयोग किया है—

१. प्र० : प्रवर्तक श्री कांतिविजयजी महाराज की हस्तलिखित प्रति।
२. मु० : मुनि श्री चंदनसागर जी द्वारा संपादित एवं चंदनसागर ज्ञान भण्डार, वेजलपुर से प्रकाशित प्रति।
३. हं० : मुनि श्री हंसविजय जी महाराज की हस्तलिखित प्रति।

हमने क्रमांक १ से ३ तक की इन पाण्डुलिपियों के पाठ भेद मुनि पुण्यविजयजी द्वारा संपादित पइण्णयसुत्ताइं नामक ग्रन्थ से लिए हैं। इन पाण्डुलिपियों की विशेष जानकारी के लिए हम पाठकों से पइण्णय-

---

१. दीवसागरपण्णत्ती तिहिं कालेहिं तिहिं अंबिलेहिं जाइ।
२. विधिमार्गप्रपा, पृष्ठ ६१, टिप्पणी २
३. ऋषिभाषित आदि की प्राचीनता के सम्बन्ध में देखें—
डॉ० सागरमल जैन-ऋषिभाषित एक अध्ययन (प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुत्ताइं ग्रन्थ की प्रस्तावना के पृष्ठ २३-२८ देख लेने की अनुशंसा करते हैं।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति के कर्त्ता—

प्रस्तुत प्रकीर्णक में प्रारम्भ से अन्त तक किसी भी गाथा में ग्रन्थकर्त्ता ने अपना नामोल्लेख तक नहीं किया है। ग्रन्थ में ग्रन्थकर्त्ता के नामोल्लेख के अभाव का वास्तविक कारण क्या रहा है? इस सन्दर्भ में निश्चय पूर्वक भले ही कुछ नहीं कहा जा सकता हो, किन्तु प्रबल संभावना यह है कि इस अज्ञात ग्रन्थकर्ता के मन में यह भावना अवश्य रही होगी कि प्रस्तुत ग्रन्थ की विषयवस्तु तो मुझे पूर्व आचार्यों या उनके ग्रन्थों से प्राप्त हुई है, इस स्थिति में मैं इस ग्रन्थ का कर्ता कैसे हो सकता हूँ? वस्तुतः प्राचीन स्तर के आगम ग्रन्थों के समान ही इस ग्रन्थ के कर्ता ने भी अपना नामोल्लेख नहीं किया है। इससे जहाँ एक ओर उसकी विनम्रता प्रकट होती है वहीं दूसरी ओर यह भी सिद्ध होता है कि यह एक प्राचीन स्तर का ग्रन्थ है। ग्रन्थकर्ता के रूप में इतना तो निश्चित है कि यह ग्रन्थ किसी श्रुत स्थविर द्वारा रचित है।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति-प्रकीर्णक और उसका रचनाकाल—

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति-प्रकीर्णक (दीवसागरपण्णत्ति-पइण्णयं) प्राकृत भाषा की एक पद्यात्मक रचना है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख स्थानांगसूत्र में मिलता है। स्थानांगसूत्र में निम्न चार अंगबाह्य-प्रज्ञप्तियों का उल्लेख हुआ है—(१) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (२) सूर्यप्रज्ञप्ति, (३) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति और (४) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति।[1] स्थानांगसूत्र में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति के इस नामोल्लेख से यह तो स्पष्ट है कि स्थानांगसूत्र के अन्तिम संकलन एवं संपादन से पूर्व इस ग्रन्थ का निर्माण हो चुका था। स्थानांगसूत्र की अन्तिम वाचना का समय पाँचवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। इस आधार पर यही सिद्ध होता है कि पाँचवीं शताब्दी के पूर्व द्वीपसागर-प्रज्ञप्ति की रचना हो चुकी थी।

स्थानांगसूत्र के पश्चात् नन्दीसूत्र और पाक्षिकसूत्र में द्वीपसागर-

---

१. चत्तारि पण्णत्तीओ अंगबाहिरियाओ पण्णत्ताओ, तंजहा-चंदपण्णत्ती, सूर-पण्णत्ती, जंबुद्दीवपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती।

(स्थानांगसूत्र, मुनि मधुकर, सूत्र ४/१/१८९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्ञप्ति का उल्लेख प्राप्त होता है। इन दोनों ही ग्रन्थों में आवश्यक व्यतिरिक्त कालिक श्रुत के अन्तर्गत द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का उल्लेख मिलता है।[1] नन्दीसूत्र का रचनाकाल भी पाँचवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। इस आधार पर यह मानना होगा कि उसके पूर्व द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का निर्माण हो चुका था। पाक्षिकसूत्र भी पर्याप्त रूप से प्राचीन हैं अतः उसमें इस ग्रन्थ का उल्लेख होना इसकी प्राचीनता का परिचायक है। इसके अतिरिक्त नन्दीसूत्र चूर्णी, आवश्यकसूत्र चूर्णी एवं पाक्षिकसूत्र की वृत्ति में भी द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का नामोल्लेख उपलब्ध है[2]। पाक्षिकसूत्र वृत्ति के अनुसार यह ग्रन्थ द्वीपों एवं सागरों का विवरण प्रस्तुत करता है। इन सभी ग्रन्थों में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का उल्लेख यह सूचित करता है कि जैनागमों की देवर्द्धिगणी की वाचना से पूर्व यह ग्रन्थ अस्तित्व में आ चुका था।

जैन आगम—स्थानांगसूत्र, समवायांगसूत्र, व्याख्याप्रज्ञप्ति, राजप्रश्नीय-सूत्र, जीवाजीवाभिगमसूत्र तथा सूर्यप्रज्ञप्ति आदि में यत्र-तत्र द्वीप-समुद्रों से संबंधित विषयवस्तु उपलब्ध होती है, लेकिन यह विषयवस्तु वहाँ विकीर्ण रूप में ही उपलब्ध है क्योंकि इनमें से किसी भी ग्रन्थ में द्वीप-समुद्रों का सांगोपांग एवं सुव्यवस्थित विवरण नहीं मिलता है, जबकि द्वीपसागर-प्रज्ञप्ति में मानुषोत्तर पर्वत के आगे स्थित द्वीप-समुद्रों का सांगोपांग एवं सुव्यवस्थित विवरण है। पुनः स्थानांगसूत्र एवं सूर्यप्रज्ञप्ति आदि आगम ग्रन्थों में इसकी आंशिक विषयवस्तु गद्य रूप में मिलती है, जबकि यह ग्रन्थ प्राकृत पद्यों में रचा गया है। आज यह कहना तो कठिन है कि यह

---

१. (क) कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तंजहा—(१) उत्तराज्झयणाइ..... (९) दीवसागरपण्णत्ती.....(३१) वण्हीदसाओ।
(नन्दीसूत्र-मुनि मधुकर, पृष्ठ १६३)
(ख) इमं वाइअं अंगबाहिरं कालिअं भगवंतं तंजहा—उत्तराज्झयणाइं (१)..... .....दीवसागरपण्णत्ती (२)..... .....तेअग्गिनिसग्गाणं (३६)।
(पाक्षिकसूत्र-देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, पृष्ठ ७९)

२. (क) नन्दीसूत्र चूर्णी, पृष्ठ ५९ (प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी)।
(ख) श्रीमद् आवश्यकसूत्रम्, पृष्ठ ६ (श्री ऋषभदेव जी केशरीमल जी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम)
(ग) द्वीपसागराणं प्रज्ञापनं यस्यां सा द्वीपसागरज्ञप्तिः।
(पाक्षिकसूत्र, पृष्ठ ८१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सामग्री द्वीपसागरप्रज्ञप्ति से आगमों में गई है या आगमों की विषय-वस्तु से ही द्वीपसागरप्रज्ञप्ति की रचना हुई है, किन्तु इतना निश्चित है कि द्वीप-समुद्रों का पद्य रूप में विवरण प्रस्तुत करनेवाला यह प्रथम एवं प्राचीन ग्रन्थ है।

'दीवसागरपण्णत्तिसंगहणीगाहाओ' नामक जो प्रकीर्णक मुनि पुण्य-विजय जी द्वारा संपादित 'पइण्णसुत्ताइं' ग्रन्थ में प्रकाशित हुआ है उसके सन्दर्भ में मुनिश्री पुण्यविजय जी ने अपनी प्रस्तावना में यह प्रश्न उठाया है कि प्रस्तुत प्रकीर्णक और नन्दीसूत्र तथा पाक्षिकसूत्र में उल्लिखित द्वीप-सागरप्रज्ञप्ति एक ही है या भिन्न-भिन्न है, यह विचारणीय है।[1] पूज्य मुनिजी को इस प्रकीर्णक के सन्दर्भ में यह भ्रान्ति क्यों हुई ? यह हम नहीं जानते हैं। जहाँ तक 'द्वीपसागरप्रज्ञप्ति संग्रहणी गाथा' नामक प्रस्तुत प्रकीर्णक का प्रश्न है, यह वही प्रकीर्णक है—जिसका उल्लेख नंदीसूत्र और पाक्षिकसूत्र में है। क्योंकि एक तो इसकी भाषा आगमों की भाषा से भिन्न या परवर्ती नहीं लगती, दूसरे विषयवस्तु को दृष्टि से भी ऐसा कोई परवर्ती उल्लेख इसमें नहीं पाया जाता है जिससे इस प्रकीर्णक को उससे भिन्न माना जाय। इसकी विषयवस्तु आगमिक उल्लेखों के अनुकूल ही है, इस दृष्टि से भी इसके भिन्न होने की कल्पना नहीं की जा सकती है।

यदि हम यह मानते हैं कि प्रस्तुत द्वीपसागरप्रज्ञप्ति संग्रहणीगाथा वह ग्रन्थ नहीं है जिसका उल्लेख स्थानांगसूत्र, नन्दीसूत्र एवं पाक्षिकसूत्र आदि आगम ग्रन्थों में हुआ है तो हमें यह कल्पना करनी होगी कि वह गद्य रूप में लिखित कोई विस्तृत ग्रन्थ रहा होगा और उस ग्रन्थ की संग्रहणी के रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना हुई होगी। फिर भी इतना तो निश्चित सत्य है कि दोनों ग्रन्थों में विषयवस्तु की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं रहा होगा। यदि हम इसे भिन्न ग्रन्थ मानते हैं तो भी यह मानने में कोई बाधा नहीं आती है कि इसका रचनाकाल ईस्वी सन् की ५वीं शताब्दी के लगभग हो, क्योंकि संग्रहणी देवर्द्धि की वाचना से पूर्व हो चुकी थी। आगमों में अनेक जगह कई उल्लेख 'गाहाओ' या 'संग्रहणी' के रूप में हुए हैं। अतः यह मानना उचित है कि 'दीवसागरपण्णत्तिसंगहणी गाहाओ' और स्थानांगसूत्र, नन्दीसूत्र तथा पाक्षिकसूत्र आदि ग्रन्थों में उल्लिखित 'दीवसागरपण्णत्ती' भिन्न-भिन्न नहीं होकर एक ही ग्रन्थ हैं।

दिगम्बर परम्परा में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का उल्लेख षट्खण्डागम की

---

१. मुनि पुण्यविजय-पइण्णयसुत्ताइं-प्रस्तावना, पृष्ठ ५३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धवलाटीका में हुआ है।[1] उसमें दृष्टिवाद के पाँच अधिकार बतलाए गए हैं—(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) प्रथमानुयोग, (४) पूर्वगत और (५) चूलिका। पुनः परिकर्म के पाँच भेद किये हैं—(१) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (२) सूर्यप्रज्ञप्ति, (३) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, (४) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति तथा (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति। दिगम्बर परम्परा के ही मान्य ग्रन्थ अंगपण्णत्ति में भी परिकर्म के पाँच भेद इसी रूप में उल्लिखित हैं।[2] दृष्टिवाद के पाँच विभागों या अधिकारों की चर्चा तो श्वेताम्बर मान्य आगम समवायांग और नन्दीसूत्र में भी है, परन्तु दिगम्बर परम्परा में मान्य परिकर्म के ये पाँच भेद श्वेताम्बर परम्परा मान्य आगमों में नहीं मिलते हैं।

श्वेताम्बर परम्परा में समवायांगसूत्र एवं नन्दीसूत्र में धवलाटीका के अनुरूप ही दृष्टिवाद के निम्न पाँच अधिकार उल्लिखित हैं[3]—

(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वगत, (४) अनुयोग और (५) चूलिका। वहाँ परिकर्म के पाँच भेद नहीं करके निम्न सात भेद किये गये हैं[4]—(१) सिद्धश्रेणिका-परिकर्म, (२) मनुष्यश्रेणिका-परिकर्म, (३) पृष्टश्रेणिका-परिकर्म, (४) अवगाहन श्रेणिका-परिकर्म (५) उपसंपद्य-श्रेणिका-परिकर्म, (६) विप्रजहतश्रेणिका-परिकर्म और (७) च्युता-च्युतश्रेणिका-परिकर्म। इस प्रकार स्पष्ट है दिगम्बर परम्परा ने दृष्टिवाद के अन्तर्गत परिकर्म के पाँच भेदों में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति की गणना की है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा ने द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का उल्लेख दृष्टिवाद के एक विभाग परिकर्म में नहीं करके चार प्रज्ञाप्तियों में किया है। ज्ञातव्य

---

१. तस्स पंच अत्थाहियारा हवंति, परियम्म-सुत्त-पढमाणियोग-पुव्वगयं-चुलिका चेदि। जं तं परियम्मं तं पंचविहं। तं जहा-चंदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती जंबूदीव-पण्णत्ती, दीवसायरपण्णत्ती, वियाहपण्णत्ती चेदि।
(षट्खण्डागम, १/१/२ पृष्ठ १०९)

२. अंगपण्णत्ती, गाथा १–११।

३. (क) दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणया आघविज्जति। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा—परिकम्मं सुत्ताइं पुव्वगयं अणुओगो चूलिया।
(ख) नन्दीसूत्र, सूत्र ९६　　(समवायांग, सूत्र ५५७)

४. (क) परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते। तं जहा—सिद्धसेणियापरिकम्मे मणुस्स-सेणियापरिकम्मे पुट्ठसेणियापरिकम्मे ओगाहणसेणिमापरिकम्मे उपसंपज्ज-सेणियापरिकम्मे विप्पजहसेणियापरिकम्मे चुआसुअसेणियापरिकम्मे।
(ख) नन्दीसूत्र, सूत्र ९७　　(समवायांग, सूत्र ५५८)

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

है दिगम्बर परम्परा में परिकर्म के अन्तर्गत जो पाँच ग्रन्थ समाहित किये गये हैं—उन्हें श्वेताम्बर परम्परा पाँच प्रज्ञप्तियाँ कहती है।

षट्खण्डागम की धवला टीका में कहा गया है कि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म बावन लाख छत्तीस हजार पदों के द्वारा उद्धारपल्य से द्वीप और समुद्रों के प्रमाण तथा द्वीप-सागर के अन्तर्भूत नानाप्रकार के दूसरे पदार्थों का वर्णन करता है।[1]

षट्खण्डागम की धवला टीका का समय ई० सन् की नवीं शती का पूर्वार्ध माना जाता है। इससे यह प्रतिफलित होता है कि धवला के लेखक को इस ग्रन्थ की सूचना अवश्य थी। यद्यपि यह कहना कठिन है कि उनके सामने यह ग्रन्थ उपस्थित था अथवा नहीं। वस्तुतः परिकर्म में जिन पाँच ग्रन्थों का उल्लेख दिगम्बर परम्परा मान्य ग्रन्थों में मिलता है वे पाँचों ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा में आज भी मान्य एवं उपलब्ध हैं। उनमें से व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) को पाँचवें अंग आगम के रूप में तथा सूर्य-प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति को उपांग के रूप में और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति को प्रकीर्णक ग्रन्थ के रूप में मान्य किया गया है। संभवतः धवलाटीकाकार ने भी इन ग्रन्थों का उल्लेख अनुश्रुति के आधार पर ही किया है। उसकी इस अनुश्रुति का आधार भी वस्तुतः यापनीय परम्परा रही है, क्योंकि वह परम्परा इन ग्रन्थों को मान्य करती थीं।

दृष्टिवाद के पाँच अधिकार और उसमें भी परिकर्म अधिकार के पाँच भेदों की जो चर्चा यहाँ की गई है उसकी विशेषता यह है कि उसमें जम्बू-द्वीपप्रज्ञप्ति आदि के साथ-साथ व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) को भी परिकर्म का विभाग माना गया है। यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा में व्याख्याप्रज्ञप्ति को पाँचवा अंग आगम माना जाता है, किन्तु जब भी पंचप्रज्ञप्ति नामक ग्रन्थों की चर्चा का प्रसंग आया तब व्याख्याप्रज्ञप्ति को उसमें समाहित किया गया। ईस्वी सन् १३०६ में निर्मित विधिमार्गप्रपा नामक ग्रन्थ में आचार्य जिनप्रभ ने एक मतान्तर का उल्लेख करते हुए लिखा है "अण्णे पुण चंदपण्णत्ति सूरपण्णत्ति च भगवईउवंगे भणंति। तेसिं मएण उवासगद साईण पंचण्ह-मंगाणमुवंगं निरयावलियासुयक्खंधो।"[2] अर्थात् कुछ आचार्यों

---

१. दीवसायरपण्णत्ती बावण्ण-लक्ख-छत्तीस-पद-सहस्सेहि उद्धारपल्ल पमाणेण दीव-सायर-पमाणं अण्णं पि दीव-सायरंतब्भूदत्थं बहुभेयं वण्णेदि।
(षट्खण्डागम, १/१/२ पृष्ठ १०९)

२. विधिमार्गप्रभा, पृ० ५७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अनुसार चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति दोनों ही भगवती के उपांग कहे गए हैं। उनके मत में उपासकदशांग आदि शेष पाँचों अंगों के उपांग निरयावलिया श्रुतस्कन्ध है। यहाँ विशेष रूप से दृष्टव्य यही है कि सूर्यप्रज्ञप्ति और चन्द्रप्रज्ञप्ति को व्याख्याप्रज्ञप्ति के साथ जोड़ा गया है। इससे यह अनुमान होता है कि एक समय श्वेताम्बर और यापनीय परम्पराओं में पाँचों प्रज्ञप्तियों को एक ही वर्ग के अन्तर्गत रखा जाता था। दिगम्बर परम्परा द्वारा धवला टीका में परिकर्म के पाँच विभागों में इन पाँचों प्रज्ञप्तियों की गणना करने का भी यही प्रयोजन प्रतीत होता है। स्थानांगसूत्र में जो अंगबाह्य चार प्रज्ञप्तियों का उल्लेख हुआ है वहाँ परिकर्म में उल्लिखित पाँच नामों में से व्याख्याप्रज्ञप्ति को छोड़कर शेष चार नामों को स्वीकृत किया गया गया है। संभवतः स्थानांगसूत्र के रचनाकार ने वहाँ व्याख्याप्रज्ञप्ति को इसलिए स्वीकृत नहीं किया कि उस समय तक व्याख्याप्रज्ञप्ति को एक स्वतन्त्र अंग आगम के रूप में मान्य कर लिया गया था। यद्यपि वह यह मानता है कि पाँचवीं प्रज्ञप्ति व्याख्याप्रज्ञप्ति है।

परिकर्म के इस समग्र वर्गीकरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि श्वेताम्बर परम्परा ने जो पाँच प्रज्ञप्तियाँ मानी थीं, दिगम्बर परम्परा ने उन्हें ही परिकर्म के पाँच विभाग माना है। दिगम्बर परम्परा में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति नाम का आज कोई भी स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है। षट्खण्डागम की धवला का उल्लेख भी मात्र अनुश्रुति पर आधारित है। जिस प्रकार दिगम्बर परम्परा में विशेषरूप से तत्त्वार्थ की दिगम्बर टीकाओं में उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि को अगबाह्य के रूप में अनुश्रुति के आधार ही मान्य किया जाता रहा है उसी प्रकार द्वीपसागरप्रज्ञप्ति को भी अनुश्रुति के आधार पर ही मान्य किया गया है।

निर्ग्रन्थ संघ की अचेलधारा की यापनीय एवं दिगम्बर परम्पराओं में मध्यलोक का विवरण देनेवाले जो ग्रन्थ मान्य रहे हैं उनमें लोक विभाग (प्राकृत), तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार एवं लोकविभाग (संस्कृत) प्रमुख हैं, इसमें भी प्राकृत भाषा में लिखित लोकविभाग नामक प्राचीन ग्रन्थ, जिसके आधार पर संस्कृत भाषा में उपलब्ध लोकविभाग की रचना हुई है, वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। यद्यपि तिलोयपण्णत्ति में उस ग्रन्थ का अनेक बार उल्लेख हुआ है। पुनः संस्कृत लोकविभागकार ने तो स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि मैंने लोकविभाग का भाषागत परिवर्तन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करके यह ग्रन्थ तैयार किया है।[1] इससे लगभग १३वीं शताब्दी में इस ग्रन्थ के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। संभव है संस्कृत म लोकविभाग की रचना के पश्चात् अथवा यापनीय परम्परा के समाप्त हो जाने से यह ग्रन्थ भी कालकवलित हो गया है। वर्तमान् में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति की विषयवस्तु दिगम्बर परम्परा में तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार और लोकविभाग में उपलब्ध होती है, इन सभी ग्रन्थों में तिलोयपण्णत्ति प्राचीन है। तिलोयपण्णत्ति का आधार संभवतः प्राचीन लोकविभाग (प्राकृत) रहा होगा, फिर भी आज स्पष्ट प्रमाण के अभाव में यह कहना कठिन है कि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति से तिलोयपण्णत्ति या प्राचीन लोकविभाग आदि ग्रन्थ कितने प्रभावित हुए हैं।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और त्रिलोकप्रज्ञप्ति (तिलोयपण्णत्ति) दोनों ही ग्रन्थों की विषयवस्तु लगभग समान है। त्रिलोकप्रज्ञप्ति में जम्बूद्वीप, मनुष्यक्षेत्र, देवलोक, नरक, तीर्थंकर, बलदेव तथा वासुदेव आदि का वर्णन है, जबकि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में मात्र मनुष्य क्षेत्र के बाहर के ही द्वीप-समुद्रों का उल्लेख हुआ है। इस दृष्टि से त्रिलोकप्रज्ञप्ति का विषय क्षेत्र द्वीपसागरप्रज्ञप्ति से व्यापक है। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं सुव्यवस्थित विवरण उपलब्ध है। अतः त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति की अपेक्षा निश्चय ही परवर्ती है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति की रचना द्वीपसागरप्रज्ञप्ति के आधार पर हुई है, किन्तु इतना निश्चित है कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति के पश्चात् रचित है। क्योंकि स्थानांगसूत्र, आदि श्वेताम्बर आगमों और दिगम्बर परम्परा मान्य षट्खण्डागम की धवला टीका में जो प्रज्ञप्तियों का उल्लेख हुआ है उसमें कहीं भी त्रिलोकप्रज्ञप्ति का उल्लेख नहीं हुआ है जबकि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का उल्लेख हुआ है।

त्रिलोकप्रज्ञप्ति का बहुत कुछ अंश दिगम्बर परम्परा के एक सम्प्रदाय के रूप में सुव्यवस्थित होने के पूर्व का है इसमें अनेक स्थलों पर आचार्यों की मान्यता भेद का भी उल्लेख हुआ है। इस सन्दर्भ में तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ की प्रो० ए० एन० उपाध्ये द्वारा लिखित भूमिका विशेष रूप से दृष्टव्य है। यद्यपि लगभग ५वीं शताब्दी तक श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय इस रूप में जैन परम्परा में विभाजन नहीं हुआ था, किन्तु निर्ग्रन्थ संघ के भिन्न-

१. लोकविभाग, श्लोक ११/५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्न आचार्य भिन्न-भिन्न मत रखते थे और अध्येताओं को उनका परिचय दे दिया जाता था। यहाँ अधिक विस्तृत चर्चा नहीं करके केवल एक-दो मान्यताओं की ही चर्चा की जा रही है—त्रिलोकप्रज्ञप्ति में देवलोकों की संख्या १२ और १६ मानने वाली दोनों ही मान्यताओं का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार महावीर के निर्वाणकाल को लेकर भी जो विभिन्न मान्यताएँ थीं, उनका उल्लेख भी इस ग्रन्थ में हुआ है। इससे यही फलित होता है कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति के रचनाकाल तक सम्प्रदायगत तात्त्विक मान्यताएँ सुनिश्चित और सुस्थापित नहीं हो पाई थी। यद्यपि त्रिलोकप्रज्ञप्ति में पर्याप्त प्रक्षिप्त अंश भी है फिर भी इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि यह मूल ग्रन्थ प्राचीन है। सामान्यतः विद्वानों ने त्रिलोकप्रज्ञप्ति का काल वीर निर्वाण के १००० हजार वर्ष पश्चात् ही निश्चित किया है क्योंकि उस अवधि के राजाओं के राज्यकाल का उल्लेख इस ग्रन्थ में मिलता है। त्रिलोकप्रज्ञप्ति का रचनाकाल ६ठीं शताब्दो से ११-वीं शताब्दी के मध्य कहीं भी स्वीकार करें, किन्तु इतना निश्चित है कि इसकी अपेक्षा द्वीपसागरप्रज्ञप्ति प्राचीन है क्योंकि इसकी रचना पाँचवीं शताब्दी के पूर्व हो चुकी थी।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति के उल्लेख हमें स्थानांगसूत्र से लेकर षट्खण्डागम की धवला टीका तक में निरन्तर रूप से मिलते हैं। स्थानांगसूत्र और नन्दीसूत्र में उसके उल्लेखों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि कम से कम वी० नि० सं० ९८० में हुई इन आगम ग्रन्थों की अन्तिम वाचना के समय तक यह ग्रन्थ अवश्य ही अस्तित्व में आ चुका था। अतः द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का रचनाकाल वी० नि० सं० ९८० और महावीर निर्वाण ईस्वी पूर्व ५२७ मानने पर ईस्वी सन् ४५३ अर्थात् ईस्वी सन् की पाँचवीं शती का उत्तरार्द्ध मानना होगा। यह इस ग्रन्थ के रचनाकाल की निम्नतम सीमा है, किन्तु इससे पूर्व भी इस ग्रन्थ की रचना होना संभव है। क्योंकि स्थानांगसूत्र में हमें सबसे परवर्ती उल्लेख महावीर के संघ में हुए नौ गणों का मिलता है किन्तु ये सभी गण भी ईस्वी सन् की द्वितीय शताब्दी तक अस्तित्व में आ चुके थे। पुनः स्थानांगसूत्र में जिन सात निह्नवों की चर्चा है, उनमें बोटिक निह्नव का उल्लेख नहीं है। अन्तिम सातवाँ निह्नव वी० नि० सं० ५८४ में हुआ था जबकि बोटिकों की उत्पत्ति वी० नि० सं० ६०९ अथवा उसके पश्चात् बतलाई गई है। बोटिक निह्नव का उल्लेख स्थानांगसूत्र में नहीं होने से यह मान सकते है कि स्थानांगसूत्र वी० नि० सं० ६०९ के पूर्व की रचना है और उस अवधि के पश्चात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें कोई प्रक्षेप नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का रचनाकाल ईस्वी सन् की प्रथम-द्वितीय शताब्दी भी माना जा सकता है। यह अवधि इस ग्रन्थ के रचनाकाल की उच्चतम सीमा है। इस प्रकार द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का रचनाकाल ई० सन् २ शती से ५ वीं शती के मध्य ही कहीं निर्धारित होता है।

जहाँ तक इस ग्रन्थ की विषयवस्तु का प्रश्न है वह भी अधिकांश रूप में स्थानांगसूत्र, सूर्यप्रज्ञप्ति, जीवाजीवाभिगमसूत्र तथा राजप्रश्नीय सूत्र आदि आगम ग्रन्थों में मिलती है। अतः यह ग्रन्थ इन ग्रन्थों का समकालीन या इनसे किंचित परवर्ती होना चाहिए। उल्लेखनीय है कि गद्य आगमों की विषयवस्तु को सरलता पूर्वक याद करने की दृष्टि से पद्य रूप में संक्षिप्त संग्रहणी गाथाएँ बनाई गई थीं। किन्तु संग्रहणी गाथाएँ भी लगभग ईस्वी० सन् की प्रथम शताब्दी में बनना प्रारम्भ हो चुकी थीं। द्वीपसागरप्रज्ञप्ति के नाम के साथ 'संग्रहणी गाथाएँ' शब्द जुड़ा हुआ है। इससे ऐसा लगता है कि आगमों में द्वीप-समुद्रों संबंधी जो विवरण थे, उनके आधार पर संग्रहणी गाथाएँ बनीं और उन गाथाओं को संकलित कर इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया होगा। इस स्थिति में भी इस ग्रन्थ का रचनाकाल ई० सन् प्रथम शताब्दी से पाँचवीं शती के मध्य ही निर्धारित होता है। ज्ञातव्य है कि वर्तमान श्वेताम्बर मान्य आगमों में उनके सम्पादन के समय अनेक संग्रहणी गाथाएँ डाल दी गई हैं।

पुनः प्रस्तुत ग्रन्थ में जिनमंदिरों और जिनप्रतिमाओं का सुव्यवस्थित उल्लेख प्राप्त होता हैं। जिन प्रतिमाओं के निर्माण के प्राचीनतम उल्लेख हमें नन्दों के शासनकाल (ई० पू० ४ थी) शती से ही मिलने लगते हैं। सम्राट खारवेल ने अपने हत्थीगुम्फा अभिलेख में यह सूचित किया है कि वह नन्दराजा द्वारा ले जाई गई कलिंगजिन की प्रतिमा को वापस लाया था।[1] मौर्यकाल (ई० पू० ३ री शती) की तो जिनप्रतिमाएँ भी आज मिलती हैं। ईस्वी सन् प्रथम-द्वितीय शताब्दी से तो मथुरा में निर्मित जिनमंदिरों और उनमें स्थापित जिनप्रतिमाओं के पुरातात्विक अवशेष मिलने लगते हैं। अतः जिनमंदिरों और जिनप्रतिमाओं के उल्लेखों के आधार पर भी यह ग्रन्थ ईस्वी सन् की प्रथम-द्वितीय शताब्दी के आसपास का प्रतीत होता है। इन उपलब्ध सभी प्रमाणों के आधार पर निष्कर्ष

---

१. तिवारी, मारुतिनन्दनप्रसाद-प्रतिमाविज्ञान, पृष्ठ १७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप में कहा जा सकता है कि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का रचनाकाल ईस्वी सन् की द्वितीय शताब्दी से पंचम शताब्दी के मध्य कहीं रहा है।

विषयवस्तु—

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में कुल २२५ गाथाएँ हैं। ये सभी गाथाएँ मध्यलोक में मनुष्य क्षेत्र अर्थात् ढाई-द्वीप के आगे के द्वीप एवं सागरों की संरचना को प्रकट करती हैं। इस ग्रन्थ में निम्न विवरण उपलब्ध होता है—

ग्रन्थ के प्रारम्भ में किसी प्रकार का मंगल अभिधेय अथवा किसी की स्तुति आदि नहीं करके ग्रन्थकर्त्ता ने सीधे विषयवस्तु का ही स्पर्श किया है। यह इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है। ग्रन्थ का प्रारम्भ मानुषोत्तर पर्वत के विवरण से किया गया है। मानुषोत्तर पर्वत के स्वरूप को बतलाते हुए इसकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, जमीन में गहराई तथा इसके ऊपर विभिन्न दिशा-विदिशाओं में स्थित शिखरों के नाम एवं विस्तार परिमाण का विवेचन किया गया है (१-१८)।

ग्रन्थ का प्रारम्भ मानुषोत्तर पर्वत से होने से ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं इस ग्रन्थ का पूर्व अंश विलुप्त तो नहीं हो गया है? क्योंकि यदि ग्रन्थकार को मध्यलोक का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना इष्ट होता तो उसे सर्वप्रथम जम्बूद्वीप फिर लवण समुद्र तत्पश्चात् धातकीखण्ड फिर कालोदधि समुद्र और उसके बाद पुष्करवर द्वीप का उल्लेख करने के पश्चात् ही मानुषोत्तर पर्वत की चर्चा करनी चाहिए थी। किन्तु ऐसा नहीं करके लेखक ने मानुषोत्तर पर्वत की चर्चा से ही अपने ग्रन्थ को प्रारम्भ किया है। संभवतः इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि जम्बूद्वीप और मनुष्य क्षेत्र का विवरण स्थानांगसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति तथा जीवाजीवाभिगम आदि अन्य आगम ग्रन्थों में होने से ग्रन्थकार ने मानुषोत्तर पर्वत से ही अपने ग्रन्थ का प्रारम्भ किया है। ज्ञातव्य है मानुषोत्तर पर्वत के आगे के द्वीप-सागरों का विवरण स्थानांगसूत्र एवं जीवाजीवाभिगम आदि में भी उपलब्ध होता है।

ग्रन्थ में नलिनोदक सागर, सुरारस सागर, क्षीरजलसागर, घृतसागर तथा क्षोदरससागर में गोतीर्थ से रहित विशेष क्षेत्रों का तथा नन्दीश्वर द्वीप का विस्तार परिमाण निरूपित है (१९-२५)।

अंजन पर्वत और उसके ऊपर स्थित जिनमंदिरों का वर्णन करते हुए अंजन पर्वतों की ऊँचाई, जमीन में गहराई, अधोभाग, मध्यभाग तथा शिखर-तल पर उसकी परिधि और विस्तार बतलाया गया है साथ ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह भी कहा है कि सुन्दर भौरों, काजल और अंजन धातु के समान कृष्णवर्ण वाले वे अंजन पर्वत गगनतल को छुते हुए शोभायमान हैं (२६-३७)।

प्रत्येक अंजन पर्वत के शिखर-तल पर गगनचुम्बी जिनमंदिर कहे गये हैं, उन जिनमन्दिरों की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई का परिमाण बतलाने के साथ यह भी कहा गया है कि वहाँ नानामणिरत्नों से रचित मनुष्यों, मगरों, विहगों और व्यालों की आकृतियाँ शोभायमान हैं, जो सर्वरत्नमय, आश्चर्य उत्पन्न करने वाली तथा अवर्णनीय हैं (३८-४०)।

ग्रन्थ में है उल्लेख कि अंजन पर्वतों के एक लाख योजन अपान्तराल को छोड़ने के बाद चार पुष्करिणियाँ हैं, जो एक लाख योजन विस्तीर्ण तथा एक हजार योजन गहरी हैं। ये पुष्करिणियाँ स्वच्छ जल से भरी हुई हैं (४१-४३)। इन पुष्करिणियों की चारों दिशाओं में चैत्यवृक्षों से युक्त चार वनखण्ड बतलाए गए हैं (४४-४७)।

पुष्करिणियों के मध्य में रत्नमय दधिमुख पर्वत कहे गए हैं। दधिमुख पर्वतों की ऊँचाई एवं परिधि की चर्चा करते हुए उन पर्वतों को शंख समूह की तरह विशुद्ध, अच्छे जमे हुए दही के समान निर्मल, गाय के दुध की तरह उज्जवल एवं माला के समान क्रमबद्ध बतलाया हैं। इन पर्वतों के ऊपर भी गगनचुम्बी जिनमंदिर अवस्थित हैं, ऐसा उल्लेख हुआ है (४८-५१)।

ग्रन्थ में अंजन पर्वतों की पुष्करिणियों का उल्लेख करते हुए दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा वाले अंजन पर्वतों की चारों दिशाओं में स्थित चार-चार पुष्करिणियों के नाम बतलाए गए हैं (५२-५७)। यहाँ पूर्व दिशा के अंजन पर्वत और उसकी चारों दिशाओं में पुष्करिणियाँ हैं अथवा नहीं, इसकी कोई चर्चा नहीं की गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार नन्दीश्वर द्वीप में इक्यासी करोड़ इक्कानवें लाख पिच्चानवें हजार योजन अवगाहना करने पर रतिकर पर्वत हैं। ग्रन्थ में इन रतिकर पर्वतों की ऊँचाई, विस्तार, परिधि आदि का परिमाण बतलाते हुए पूर्व-दक्षिण, पश्चिम-दक्षिण, पश्चिम-उत्तर तथा पूर्व-उत्तर दिशा में स्थित रतिकर पर्वतों की चारों दिशाओं में एक लाख योजन विस्तीर्ण तथा तीन लाख योजन परिधि वाली चार-चार राजधानियों को पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से चारों दिशाओं में स्थित माना है (५८-७०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डल द्वीप का विस्तार दो हजार छः सौ इक्कीस करोड़ चौवालीस लाख योजन बतलाया गया है। ग्रन्थ में कुण्डल द्वीप के मध्य में स्थित प्राकार के समान आकार वाले कुण्डल पर्वत की ऊँचाई, जमीन में गहराई तथा अधो भाग, मध्य भाग और शिखर-तल के विस्तार का भी विवेचन किया गया है (७१-७५)।

कुण्डल पर्वत के ऊपर पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से चारों दिशाओं में चार-चार—इस प्रकार कुल सोलह शिखर कहे गये हैं। साथ ही इन शिखरों के अधोभाग, मध्यभाग, और शिखर-तल की परिधि और विस्तार का परिमाण भी बतलाया गया है (७६-८३)। इन शिखरों पर पल्योपम काय-स्थिति वाले सोलह नागकुमार देव कहे गए हैं (८४-८६)।

कुण्डल पर्वत के भीतर उत्तर दिशा में ईशान लोकपालों की तथा दक्षिण दिशा में शक्र लोकपालों की सोलह-सोलह राजधानियाँ कही गई हैं। कुण्डल पर्वत के मध्य भाग में रतिकर पर्वत के समान परिमाण वाला वैश्रमणप्रभ पर्वत स्थित माना है। उस पर्वत को चारों दिशाओं में जम्बू-द्वीप के समान लम्बाई-चौड़ाई वाली चार राजधानियाँ हैं। इसी प्रकार वरुणप्रभ पर्वत, सोमप्रभ पर्वत तथा यमवृत्तिप्रभ पर्वत की चारों दिशाओं में भी चार-चार राजधानियाँ मानी गई हैं (८७-९७)।

कुण्डल पर्वत की भीतरी राजधानियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि दक्षिण दिशा में शक्र देवराज की आठ अग्रमहिषियाँ और उनके नाम वाली आठ राजधानियाँ हैं तथा उत्तर दिशा में ईशान देवराज की आठ अग्रमहिषियाँ और उन्हीं के नाम वाली आठ राजधानियाँ हैं (९८-१०१)।

कुण्डल पर्वत के बाहर तैंतीस रमणीय रतिकर पर्वत माने गये हैं। इन पर्वतों को शक्र देवराज के जो तैंतीस देव हैं, उनके उत्पाद पर्वत बताया गया है। आगे की गाथाओं में शक्र देवराज और ईशान देवराज की अग्रमहिषियोंके नाम वाली आठ-आठ राजधानियों का उल्लेख हुआ है (१०२-१०९)।

ग्रन्थ में कुण्डल समुद्र और रुचक द्वीप के विस्तार परिमाण की संक्षिप्त चर्चा के पश्चात् रुचक द्वीप के मध्य में स्थित रुचक पर्वत की ऊँचाई, जमीन में गहराई, अधोभाग, मध्यभाग तथा शिखर-तल का उसका विस्तार परिमाण आदि बतलाया गया है (११०-११६)।

रुचक पर्वत के शिखर-तल पर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर-चारों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिशाओं में नानारत्नों से विचित्र प्रकाश करने वाले आठ-आठ शिखर माने गये हैं (११७-१२६)। इन शिखरों पर पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से चारों दिशाओं में एक पल्योपम काय-स्थिति वाली आठ-आठ दिशा-कुमारियाँ कही गई हैं (१२७-१३५)। रुचक पर्वत पर पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से द्वीपाधिपति देवों के चार आवास बतलाये गये हैं। पुनः यह कहा गया है कि इन्हीं नाम वाले आवास दिशाकुमारियों के भी हैं (१३६-१३८)। आगे पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से चार-चार शिखरों का उल्लेख करते हुए कहा है कि इन शिखरों पर डेढ़ पल्योपम काय-स्थिति वाली दिशाकुमारियाँ रहती हैं (१३९-१४२)।

ग्रन्थ में पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से चारों दिशाओं में चार दिग्हस्ति शिखर तथा उन पर डेढ़ पल्योपम काय-स्थिति वाले दिग्हस्ति देव कहे गये हैं (१४३-१४४)। आगे की गाथाओं में पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से चारों दिशाओं में चार शिखर कहे गये हैं, उन शिखरों को सविशेष पल्योपम काय-स्थिति वाली विद्युतकुमारी देवियों के माने हैं (१४५-१४८)।

ग्रन्थ में उल्लेख है कि रुचक पर्वत के बाहर आठ लाख चौरासी हजार योजन चलने पर रतिकर पर्वत आते हैं। इन रतिकर पर्वतों को शक्र, ईशान और सामानिक देवों के उत्पाद पर्वत माना गया है। उत्पाद पर्वतों की चारों दिशाओं में जम्बूद्वीप के समान लम्बाई-चौड़ाई वाली चार राजधानियाँ कही गई हैं (१४९-१५५)।

ग्रन्थ में जम्बूद्वीप आदि द्वीप-समुद्रों तथा मानुषोत्तर पर्वत पर दो-दो, एवं रुचक पर्वत पर तीन अधिपति देव माने हैं। इनके पश्चात् स्थित अन्य द्वीप-समुद्रों में उनके समान नाम वाले अधिपति देव माने गये हैं। पुनः यह भी कहा गया है कि एक समान नाम वाले असंख्य देव होते हैं (१५६-१६३)। वासों, द्रहों, वर्षधर पर्वतों, महानदियों, द्वीपों और समुद्रों के अधिपति देव एक पल्योपम कायस्थिति वाले कहे गए हैं। आगे यह भी उल्लिखित है कि द्वीपाधिपति देवों की उत्पत्ति द्वीप के मध्य में तथा समुद्राधिपति देवों की उत्पत्ति विशेष क्रीड़ा-द्वीपों में होती है (१६४-१६५)।

रुचक समुद्र में असंख्यात् द्वीप-समुद्र हैं। रुचक समुद्र में पहले अरुण द्वीप और उसके बाद अरुण समुद्र आता है। अरुण समुद्र में दक्षिण दिशा की ओर तिगिञ्छि पर्वत माना गया है। तिगिञ्छि पर्वत का विस्तार एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिधि अधोभाग तथा शिखर-तल पर अधिक किन्तु मध्यभाग में कम बतलाई गयी है। यद्यपि पर्वत के सन्दर्भ में ऐसी कल्पना करना उचित नहीं है कि उसकी अधोभाग तथा शिखर-तल की परिधि एवं विस्तार अधिक हो तथा उसकी मध्यवर्ती परिधि एवं विस्तार कम हो, किन्तु ग्रन्थ में आगे यह भी कहा गया है कि तिगिञ्छि पर्वत का मध्यवर्ती भाग उत्तम वज्र जैसा है (१६६-१७१)। इस आधार पर तिगिञ्छि पर्वत का यही आकार बनता है। तिगिञ्छि पर्वत को रत्नमय पद्मवेदिकाओं, वनखण्डों तथा अशोक-वृक्षों से घिरा हुआ कहा है (१७२-१७३)।

तिगिञ्छि पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर चमरचंचा राजधानी कही गई है। इस राजधानी का विस्तार एक लाख योजन तथा परिधि तीन लाख योजन मानी गई है। साथ ही यह भी माना गया है कि यह राजधानी भीतर से चौरस और बाहर से वर्तुलाकार है। आगे की गाथाओं में चमरचंचा राजधानी के स्वर्णमय प्राकारों, दरवाजों, राजधानी के प्रवेश मार्गों तथा देव विमानों का विस्तार परिमाण उल्लिखित है (१७४-१८६)।

ग्रन्थ में चमरचंचा राजधानी के प्रासाद की पूर्व-उत्तर दिशा में सुधर्मासभा मानी गई है। उसके बाद चैत्यगृह, उपपातसभा, ह्रद, अभिषेक सभा, अलंकार सभा और व्यवसाय सभा का वर्णन किया गया है (१८७-१८८)। सुधर्मा सभा की तीन दिशाओं में आठ योजन ऊँचे तथा चार योजन चौड़े तीन द्वार माने गये हैं। उन द्वारों के आगे मुखमण्डप, उनमें प्रेक्षागृह और प्रेक्षागृहों में अक्षवाटक आसन होना माना गया है। प्रेक्षागृहों के आगे स्तूप तथा उन स्तूपों की चारों दिशाओं में एक-एक पीठिका है। प्रत्येक पीठिका पर एक-एक जिनप्रतिमा मानी गई है। स्तूपों के आगे की पीठिकाओं पर चैत्य वृक्ष, चैत्य वृक्षों के आगे मणिमय पीठिकाएँ, उन पीठिकाओं के ऊपर महेन्द्र ध्वज तथा उनके आगे नंदा पुष्करिणियाँ मानी गई हैं। तथा यह कहा गया है कि यही वर्णन जिन-मन्दिरों तथा शेष बची हुई सभाओं का भी है (१८९-१९५)। किन्तु जो कुछ भिन्नता है उसको आगे की गाथाओं में कहा गया है।

बहुमध्य भाग में चबुतरा, चबुतरे पर मानवक चैत्य स्तम्भ, चैत्य स्तम्भ पर फलकें, फलकों पर खूटियाँ, खूटियों पर लटके हुए वज्रमय गीकें, सीकों में डिब्बे तथा उन डिब्बों में जिनभगवान् की अस्थियाँ मानी गई हैं (१९६-१९७)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानवक चैत्य स्तम्भ की पूर्व दिशा में आसन, पश्चिम दिशा में शय्या, शय्या की उत्तर दिशा में इन्द्रध्वज तथा इन्द्रध्वज की पश्चिम दिशा में चौप्पाल नामक शस्त्र भण्डार माना गया है और कहा है कि वहाँ स्फटिक मणियों एवं शस्त्रों का खजाना रखा हुआ है (१९८-१९९)।

ग्रन्थ में जिनमंदिर और जिनप्रतिमाओं का विशेष विवरण उपलब्ध है। जिनमंदिर में जिनदेव की एक सौ आठ प्रतिमाओं, प्रत्येक प्रतिमा के आगे एक-एक घण्टा तथा प्रत्येक प्रतिमा के दोनों पार्श्व में दो-दो चँवरधारी प्रतिमाएँ मानी गई हैं। शेष सभाओं में भी पीठिका, आसन, शय्या, मुखमण्डप, प्रेक्षागृह, ह्रद, स्तूप, चैत्य स्तम्भ, ध्वज एवं चैत्य वृक्षों आदि का यही वर्णन निरूपित किया गया है (२००-२०६)।

ग्रन्थ के अनुसार चमरचंचा राजधानी की उत्तर दिशा में अरुणोदक समुद्र में पाँच आवास हैं। आगे सोमनसा, सुसीमा तथा सोम-यमा नामक तीन राजधानियाँ और उनका परिमाण बतलाया गया है। यह भी कहा गया है कि वहाँ वरुणदेव के चौदह हजार तथा नलदेव के सोलह हजार आवास हैं। इन राजधानियों के बाहरी वर्तुल पर सैनिकों और अंगरक्षकों के आवास माने गये हैं। पुनः अरुण समुद्र में उत्तर दिशा की ओर भी सोमनसा, सुसीमा और सोम-यमा-ये तीनों राजधानियाँ मानी गई हैं, अन्तर यह है कि यहाँ स्थित इन राजधानियों का विस्तार परिमाण उन राजधानियों से दो हजार योजन अधिक माना गया है। यहाँ वरुणदेव और नलदेव के आवासों की चर्चा करते हुए उनके भी दो-दो हजार आवास अधिक माने गए हैं, जो विचारणीय हैं (२०७-२१८)।

जम्बूद्वीप में दो, मानुषोत्तर पर्वत में चार तथा अरुण समुद्र में देवों के छः आवास माने गये हैं तथा कहा गया है कि उन आवासों में ही उन देवों की उत्पत्ति होती है। असुरकुमारों, नागकुमारों एवं उदधिकुमारों के आवास अरुण समुद्र में माने गये हैं और उन्हीं में उनकी उत्पत्ति होना माना गया है। इसी प्रकार द्वीपकुमारों, दिशाकुमारों, अग्निकुमारों तथा स्तनितकुमारों के आवास अरुण द्वीप में माने गए हैं और यह कहा गया है कि उन्हीं में उनकी उत्पत्ति होती है (२२१-२२३)।

ग्रन्थ की अन्तिम दो गाथाओं में चन्द्र-सूर्यों की संख्या का निरूपण करते हुए कहा गया है कि पुष्करवर द्वीप के ऊपर एक सौ चौवालीस चन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और एक सौ चौवालीस सूर्यों की पंक्तियाँ हैं। इसके आगे के द्वीप-समुद्रों में चन्द्र-सूर्यों की पंक्तियों में चार गुणा वृद्धि होती है। ग्रन्थ का समापन यह कहकर किया गया है कि जो द्वीप और समुद्र जितने लाख योजन विस्तार वाला होता है वहाँ उतनी ही चन्द्र और सूर्यों की पंक्तियाँ होती हैं (२२४-२२५)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति प्रकीर्णक और अन्य आगम ग्रन्थ तुलनात्मक विवरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयवस्तु की तुलना—

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति प्रकीर्णक की विषयवस्तु श्वेताम्बर परम्परा के मान्य आगम ग्रन्थों में कहाँ एवं किस रूप में उपलब्ध है, इसका तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है—

[१] पुक्खरवरदीवड्ढं परिक्खिवइ माणुसोत्तरो सेलो ।
पायारसरिसरूवो विभयंतो माणुसं लोयं ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १)

[२] सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं १७२१ सो समुव्विद्धो ।
चत्तारि य तीसाइं मूले कोसं ४३०½ च ओगाढो ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २)

[३] दस बावीसाइं अहे वित्थिण्णो होइ जोयणसयाइं १०२२ ।
सत्त य तेवीसाइं ७२३ वित्थिण्णो होइ मज्झम्मि ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ३)

[४] तस्सुवरि माणुसनगस्स कूडा दिसि विदिसि होंति सोलस उ ।
तेसिं नामावलियं अहक्कमं कित्तइस्सामि ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५)

[५] एगासि एगनउया पंचाणउइं भवे सहस्साइं ।
तिण्णेव जोयणसए ८१९१९५३०० ओगाहित्ताण अंजणगा ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २६)

[६] चुलसीइ सहस्साइं ८४००० उव्विद्धा, ते गया सहस्समहे १००० ।
धरणियले वित्थिण्णा अणूणगे ते दस सहस्से १०००० ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २७)

[७] विक्खंभेणंजणगा सिहरतले होंति जोयणसहस्सं १००० ।
तिन्नेव सहस्साइं बावट्ठसयं ३१६२ परिरएणं ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ३५)

[८] अंजणगपव्वयाणं सिहरतलेसुं हवंति पत्तेयं ।
अरहंताययणाइं सीहनिसाईणि तुंगाइं ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ३८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१] ता पुक्खरवरस्स णं दीवस्स बहुमज्झदेसभाए माणुसुत्तरे णामं पव्वए पण्णत्ते, वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिए जे णं पुक्खरवरं दीवं दुहा विभयमाणे विभयमाणे चिट्ठइ, तं जहा—१. अब्भितर-पुक्खरद्धं च, २. बाहिरपुक्खरद्धं च।

(सूर्यप्रज्ञप्ति, पृष्ठ १८७)

[२] माणुसुत्तरे णं पव्वए सत्तरसएक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ते।

(समवायांगसूत्र, १७/३)

[३] माणुसुत्तरे णं पव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेणं पण्णत्ते।

(स्थानांगसूत्र, १०/४०)

[४] माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिं चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—रयणे, रतणुच्चए, सव्वरयणे, रतणसंचए।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३०३)

[५] णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवाल-विखंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउद्दिसिं चत्तारि अंजणगपव्वता पण्णत्ता।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३३८)

[६] (i) ते णं अंजणगपव्वता चउरासीतिं जायणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३३८)

(ii) सव्वेसिं णं अंजणगपव्वया चउरासीइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

(समवायांगसूत्र, ८४/८)

[७] तदणंतरं च णं मायाए-मायाए परिहायमाणा-परिहायमाणा उवरिमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं पण्णत्ता। मूले इक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं, उवरिं तिण्णि-तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोयणसतं परिक्खेवेणं।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३३८)

[८] तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि सिद्धायतणा पण्णत्ता।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[९] जोयणसयमायामा १००, पन्नासं ५० जोयणाइं वित्थिन्ना।
पनत्तरि ७५ मुव्विद्धा अंजणगतले जिणाययणा॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ४०)

[१०] अंजणगपव्वयाण उ सयस्सहस्सं १००००० भवे अबाहाए।
पुव्वाइआणुपुव्वी पोक्खरणीओ उ चत्तारि॥
पुव्वेण होइ नंदा १ नंदवई दक्खिणे दिसाभाए २।
अवरेण य णंदुत्तर ३ नंदिसेणा उ उत्तरओ ४॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ४१-४२)

[११] एगं च सयसहस्सं १००००० वित्थिण्णाओ सहस्समोविद्धा १००० ।
निम्मच्छ-कच्छभाओ जलभरियाओ अ सव्वाओ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ४३)

[१२] पुक्खरणीण चउदिसिं पंचसए ५०० जोयणाणऽबाहाए।
पुव्वाइआणुपुव्वी चउद्दिसिं होंति वणसंडा॥
पागारपरिक्खित्ता सोहंते ते वणा अहियरम्मा।
पंचसए ५०० वित्थिन्ना, सयस्सहस्सं १००००० च आयामा॥
पुव्वेण असोगवणं, दक्खिणओ होइ सत्तिवन्नवणं।
अवरेण चंपयवणं, चूयवणं उत्तरे पासे॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ४४-४६)

[१३] रयणमुहा उ दहिमुहा पुक्खरणीणं हवंति मज्झम्मि।
दस चेव सहस्सा १०००० वित्थरेण, चउसट्ठि ६४ मुव्विद्धा॥
एक्कत्तीस सहस्सा छच्चेव सया हवंति तेवीसा ३१६२३।
दहिमुहनगपरिखेवो किंचिविसेसेण परिहीणो॥
संखदल-विमलनिम्मलदहिघण-गोखीर-हारसंकासा।
गगणतलमणुलिहिंता सोहंते दहिमुहा रम्मा॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ४८-५०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[९] ते णं सिद्धायतणा एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३३९)

[१०] तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-णंदुत्तरा, णंदा, आणंदा, णंदिवद्धणा।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४०)

[११] ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणं पण्णासं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, दसजोयणसताइं उव्वेहेणं।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४०)

[१२] (i) तासि णं पुक्खरिणोणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा-पुरतो दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं उत्तरे णं।
पुव्वेणं असोगवणं, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं।
अवरे णं चंपगवणं, चूयवणं उत्तरे पासे॥

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४०)

(ii) विजयाए णं रायहाणीए चउद्दिसिं पंचपंचजोयणसयाइं अबाहाए, एत्थ णं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा-असोगवणे, सत्तिवण्णवणे, चंपकवणे, चूयवणे। पुरत्थिमेणं असोगवणे, दाहिणेणं सत्तिवण्णवणे, पच्चत्थिमेणं चंपगवणे उत्तरेणं चूयवणे। ते णं वणसंडा साइरेगाइं दुवालस जोयणसहस्साइं आयामेणं पंचजोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता पत्तेयं पत्तेयं पागारपरिक्खित्ता किण्हा किण्होभासा वणसंडवण्णओ भणियव्वो जाव बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३६ (i))

[१३] तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि दधिमुहगपव्वया पण्णत्ता। ते णं दधिमुहगपव्वया चउसट्ठिं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लग-संठाणसंठिता दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं एक्कतीसं जोयण-सहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४] जो दक्खिणअंजणगो तस्सेव चउद्दिसिं च बोद्धव्वा ।
पुक्खरिणी चत्तारि वि इमेहिं नामेहिं विन्नेया ॥
पुव्वेण होइ भद्दा १, होइ सुभद्दा उ दक्खिणे पासे २ ।
अवरेण होइ कुमुया ३, उत्तरओ पुंडरिगिणी उ ४ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५२-५३)

[१५] अवरेण अंजणो जो उ होइ तस्सेव चउदिसिं होंति ।
पुक्खरिणीओ, नामेहिं इमेहिं चत्तारि विन्नेया ॥
पुव्वेण होइ विजया १, दक्खिणओ होइ वेजयंती उ २ ।
अवरेणं तु जयंती ३, अवराइय उत्तरे पासे ४ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५४-५५)

[१६] जो उत्तरअंजणगो तस्सेव चउद्दिसिं च बोद्धव्वा ।
पुक्खरिणीओ चत्तारि, इमेहिं नामेहिं विन्नेया ॥
पुव्वेण नंदिसेणा १, आमोहा पुण दक्खिणे दिसाभाए २ ।
अवरेणं गोत्थूभा ३ सुदंसणा होइ उत्तरओ ४ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५६-५७)

[१७] एक्कासि एगनउया पंचाणउइं भवे सहस्साइं ८१९१९५००० ।
नंदीसरवरदीवे ओगाहित्ताण रइकरगा ॥
उच्चत्तेण सहस्सं १०००, अड्ढाइज्जे सए य उव्विद्धा २५० ।
दस चेव सहस्साइं १०००० वित्थिण्णा होंति रइकरगा ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५८-५९)

[१८] एक्कत्तीस सहस्सा छ च्चेव सए हवंति तेवीसे ३१६२३ ।
रइकरगपरिक्खेवो किंचिविसेसेण परिहीणो ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ६०)

[१९] जो पुव्वदक्खिणे रइकरगो तस्स उ चउद्दिसिं होंति ।
सक्कऽग्गमहिस्सीणं एया खलु रायहाणीओ ॥
देवकुरु १, उत्तरकुरा २, एया पुव्वेण दक्खिणेणं च ।
अवरेण उत्तरेण य नंदुत्तर ३ नंदिसेणा ४ य ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ६२-६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४] तत्थ णं से दाहिणिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-भद्दा, विसाला, कुमुदा, पोंडरीगिणी।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४१)

[१५] तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-णंदिसेणा, अमोहा, गोथूभा, सुदंसणा।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४२)

[१६] तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिता।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४३)

[१७] णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवाल-विक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउसु विदिसासु चत्तारि रतिकरगपव्वता पण्णत्ता, तं जहा-उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए। ते णं रतिकरगपव्वता दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं दस गाउयसताइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा झल्लरि-संठाणसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४४)

[१८] एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं; सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४४)

[१९] तत्थ णं जे से दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-समणा, सोमणसा, अच्चिमाली, मणोरमा। पउमाए, सिवाए, सतीए, अंजूए।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२०] जो अवरदक्खिणे रइकरो उ तस्सेव चउदिसिं होंति ।
सक्कऽग्गमहिस्सीणं एया खलु रायहाणीओ ॥
भूया १ भूयवडिंसा २, एया पुव्वेण दक्खिणेण भवे ।
अवरेण उत्तरेण य मणोरमा ३ अग्गिमालीया ४ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ६५-६६)

[२१] अवरुत्तररइकरगे चउद्दिसिं होंति तस्स एयाओ ।
ईसाणअग्गमहिसीण ताओ खलु रायहाणीओ ॥
सोमणसा १ य सुसीमा २, एया पुव्वेण दक्खिणेण भवे ।
अवरेण उत्तरेण य सुदंसणा ३ चेवऽमोहा ४ य ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ६७-६८)

[२२] पुव्वुत्तररइकरगे तस्सेव चउद्दिसिं भवे एया ।
ईसाणऽग्गमहिसीण सालपरिवेढियतणओ ॥ ॥
रयणप्पहा १ य रयणा २, [एया] पुव्वेण दक्खिणेण भवे ।
सव्वरयणा ३ रयणसंचया ४ य अवरुत्तरे पासे ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ६९-७०)

२३] कणगे १ कंचणगे २ तवण ३ दिसासोवत्थिए ४ अरिट्ठे ५ य ।
चंदण ६ अंजणमूले ७ वइरे ८ पुण अट्ठमे भणिए ॥
नाणारयणविचित्ता उज्जोवंता हुयासणसिहा व ।
एए अट्ठ वि कूडा हवंति पुव्वेण रुयगस्स ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ११९-१२०)

[२४] फलिहे १ रयणे २ भवणे ३ पउमे ४ नलिणे ५ ससी ६ य नायव्वे ।
वेसमणे ७ वेरुलिए ८ रुयगस्स हवंति दक्खिणओ ॥
नाणारयणविचित्ता अणोवमा धंतरूवसंकासा ।
एए अट्ठ वि कूडा रुयगस्स हवंति दक्खिणओ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १२१-१२२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२०] तत्थ णं जे से दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-भूता, भूतवडेंसा, गोथूभा, सुदंसणा। अमलाए, अच्छराए, णवमियाए रोहिणीए।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४७)

[२१] तत्थ णं जे से उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिमीसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवप्पमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-रयणा, रतणुच्चया, सव्वरतणा, रतणसंचया। वसूए, वसुगुत्ताए, वसुमित्ताए, वसुंधराए।

(स्थानांगसूत्र, (४/२/३४८)

[२२] तत्थ णं जे से उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-णंदुत्तरा, णंदा, उत्तरकुरा, देवकुरा। कण्हाए, कण्हराईए, रामाए, रामरक्खियाए।

(स्थानांगसूत्र, ४/२/३४९)

[२३] जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं रूयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

रिट्ठे तवणिज्ज कंचण, रयत दिसासोत्थिते पलंबे य।
अंजणे अंजणपुलए, रूयगस्स पुरत्थिमे कूडा॥

(स्थानांगसूत्र, ८/९५)*

[२४] जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं रूयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

कणए कंचणे पउमे, णलिणे ससि दिवायरे चेव।
वेसमणे वेरूलिए, रूयगस्स उ दाहिणे कूडा॥

(स्थानांगसूत्र, ८/९६)*

---

* द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में इन शिखरों को रुचक पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित माना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२५] अमोहे १ सुप्पबुद्धे य २ हिमवं ३ मंदिरे ४ इ य ।
रुयगे ५ रुयगुत्तरे ६ चंदे ७ अट्ठमे य सुदंसणे ८ ॥
नाणारयणविचित्ता अणोवमा धंतरूवसंकासा ।
एए अट्ठ वि कूडा रुयगस्स वि होंति पच्छिमओ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १२३-१२४)

[२६] विजए १ य वेजयंते २ जयंत ३ अपराइए ४ य बोद्धवे ।
कुंडल ५ रुयगे ६ रयणुच्चए ७ य तह सव्वरयणे ८ य ॥
नाणारयणविचित्ता उज्जोवेंता हुयासणसिहा व ।
एए अट्ठ वि कूडा रुयगस्स हवंति उत्तरओ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १२५-१२६)

[२७] नंदुत्तरा । य नंदा २ आणंदा ३ तह य नंदीसेणा ४ य ।
विजया ५ य वेजयंती ६ जयंति ७ अवराइया ८ चेव ॥
एया पुरत्थिमेणं रुयगम्मि उ अट्ठ होंति देवीओ ।
पुव्वेण जे उ कूडा अट्ठ वि रुयगे तहिं एया ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १२८-१२९)

[२८] लच्छिमई १ सेसमई २ चित्तगुत्ता ३ वसुंधरा ४ ।
समाहारा ५ सुप्पदिन्ना ६ सुप्पबुद्धा ७ जसोधरा ८ ॥
एयाओ दक्खिणेणं हवंति अट्ठ वि दिसाकुमारीओ ।
जे दक्खिणेण कूडा अट्ठ वि रूयगे तहिं एया ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १३०-१३१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२५] जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं रूयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
सोत्थिते य अमोहे य, हिमवं मंदरे तहा।
रूअगे रूयगुत्तमे चंदे, अट्ठमे य सुदंसणे॥
(स्थानांगसूत्र, ८/९७)*

[२६] जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रूअगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
रयण-रयणुच्चए य, सव्वरयण रयणसंचए चेव।
विजये य वेजयंते जयंते अपराजिते॥
(स्थानांगसूत्र, ८/९८)*

[२७] (i) तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—
णंदुत्तरा य णंदा, आणंदा णंदिवद्धणा।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया॥
(स्थानांगसूत्र, ८/९५)

(ii) नंदुत्तरा १ य नंदा २ आणंदा ३ नंदिवद्धणा ४ चेव।
विजया ५ य वेजयंती ६ जयंति ७ अवराइअट्ठमिया ८॥
एमाओ रूयगनगे पुव्वे कूडे वसंति अमरीओ।
आदंसगहत्थाओ जणणीणं ठंति पुव्वेणं॥
(तित्थोगाली प्रकीर्णक, गाथा १५३-१५४)

[२८] (i) तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—
समाहारा सुपतिण्णा, सुप्पबुद्धा जसोहरा।
लच्छिवती सेसवती, चित्तगुत्ता वसुंधरा॥
(स्थानांगसूत्र, ८/९६)

(ii) रूयगे दाहिणकूडे अट्ठ समाहारा १ सुप्पइण्णा २ य।
तत्तो य सुप्पबुद्धा ३ जसोधरा ४ चेव लच्छिमई ५॥
सेसवति ६ चित्तगुत्ता ७ जसो (वसु)धरा ८ चेव गहियभिंगारा।
देवीण दाहिणेणं चिट्ठंति पगायमाणीओ॥
(तित्थोगाली प्रकीर्णक, गाथा १५५-१५६)

---

* द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में इन शिखरों को रुचक पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित माना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२९] इलादेवी १ सुरादेवी २ पुहई ३ पउमावई ४ य विन्नेया ।
एगनासा ५ णवमिया ६ सीया ७ भद्दा ८ य अट्ठमिया ॥
एयाओ पच्छिमदिसासमासिया अट्ठ दिसाकुमारीओ ।
अवरेण जे उ कूडा अट्ठ वि रूयगे तहिं एया ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १३२-१३३)

[३०] अलंबुसा १ मीसकेसी २ पुंडरगिणी ३ वारुणी ४ ।
आसा ५ सग्गप्पभा ६ चेव सिरि ७ हिरी ८ चेव उत्तरओ ॥
एया दिसाकुमारी कहिया सव्वण्णु-सव्वदरिसीहिं ।
जे उत्तरेण कूडा अट्ठ वि रुयगे तहिं एया ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १३४-१३५)

[३१] रुयगाओ समुद्दाओ दीव-समुद्दा भवे असंखेज्जा ।
गंतूण होइ अरुणो दीवो, अरुणो तओ उदही ॥
बायालीस सहस्सा ४२००० अरुणं ओगाहिऊण दक्खिणओ ।
वरवइरविग्गहीओ सिलनिचओ तत्थ तेगिच्छी ॥
सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं १७२१ सो समुव्विद्धो ।
दस चेव जोयणसए बावीसे १०२२ वित्थडो हेट्ठा ॥
चत्तारि जोयणसए चउवीसे ४२४ वित्थडो उ मज्झम्मि ।
सत्तेव य तेवीसे ७२३ सिहरतले वित्थडो होई ॥
सत्तरसएक्कवीसाइं १७२१ पएसाणं सयाइं गंतूणं ।
एक्कारस छन्नउया ११९६ वड्ढंते दोसु पासेसु ॥
बत्तीस सया बत्तीसउत्तरा ३२३२ परिरओ विसेसूणो ।
तेरस ईयालाइं १३४१ बावीसं छलसिया २२८६ परिही ॥
रयणमओ पउमाए वणसंडेणं च संपरिक्खित्तो ।
मज्झे असोउववेढो, अड्ढाइज्जाइं उव्विद्धो ॥
वित्थिण्णो पणुवीसं तत्थ य सीहासणं सपरिवारं ।
नाणामणि-रयणमयं उज्जोवंतं दस दिसाओ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १६६-१७३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२९] (i) तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—
इलादेवी सुरादेवी, पुढवी पउमावती।
एगणासा णवमिया सीता भद्दा य अट्ठमा॥
(स्थानांगसूत्र, ८/९७)

(ii) देवीओ चेव इला १ सुरा २ य पुहवी ३ य एगनासा ४ य।
पउमावई ५ य नवमी ६ भद्दा ७ सीया य अट्ठमिया ८॥
रूयगावरकूडनिवासिणीओ पच्चत्थिमेण जणणीणं।
गायंतीओ चिट्ठंति तालिवेंटे गहेऊणं॥
(तित्थोगाली प्रकीर्णक, गाथा १५७-१५८)

[३०] (i) तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—
अलंबुसा मिस्सकेसी, पोंडरिगी य वारूणी।
आसा सव्वगा चेव, सिरी हिरी चेव उत्तरतो॥
(स्थानांगसूत्र, ८/९८)

(ii) तत्तो अलंबुसा १ मिसकेती (सी) २ तह पुंडरि (री) गिणी ३ चेव।
वारुणि ४ आसा ५ सव्वा ६ सिरी ७ हिरी ८ चेव उत्तरओ॥
(तित्थोगाली प्रकीर्णक, गाथा १५९)

[३१] कहि णं भंते ! चमरस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा पण्णत्ता ? गोयमा जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीईवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लातो वेइयंतातो अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चमरस्स असुररण्णो तिगिंछिकूडे नाम उप्पायपव्वते पण्णत्ते, सत्तरसएक्कवीसे जोयणसते उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारितीसे जोयणसते कोसं च उव्वेहेणं,···मूले वित्थडे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले···तस्स णं तिगिंछिकूडस्स उप्पायपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे···एत्थ णं महं एगे पासातवडिंसए पण्णत्ते अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं जोयणसयं विक्खंभेणं। पासायवण्णओ। उल्लोयभूमिवण्णओ। अट्ठ जोयणाइं मणिपेढिया। चमरस्स सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं।
(वियाहपण्णत्तिसुत्तं, शतक २ उद्देशक ८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३२] तेगिच्छि दाहिणओ, छक्कोडिसयाइं कोडिपणपन्नं ।
पणतीसं लक्खाइं पण्णसहस्से ६५५३५५०००० अइवइत्ता ॥
ओगाहित्ताणमहे चत्तालीसं भवे सहस्साइं ४०००० ।
अब्भितरचउरंसा बाहिं वट्टा चमरचंचा ॥
एगं च सयसहस्सं १००००० वित्थिण्णो होइ आणुपुव्वीए ।
तं तिगुणं सविसेसं परीरएणं तु बोद्धव्वा ॥

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १७४-१७६)

[३३] सयमेगं पणुवीसं १२५, बासट्ठिं जोयणाइं अद्धं च ६२½ ।
एक्कत्तीस सकोसे ३१½ य ऊसिया, वित्थडा अद्धं ॥

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १८७)

[३४] पासायस्स उ पुव्वुत्तरेण एत्थ उ सभा सुहम्मा उ ।
तत्तो य चेइयघरं उववायसभा य हरओ य ॥
अभिसेक्का-ऽलंकारिय-ववसाया ऊसिया उ छत्तीसं ३६ ।
पन्नासइ ५० आयामा, आयामऽद्धं २५ तु वित्थिण्णा ॥

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १८८-१८९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३२] तस्स णं तिगिंछिकूडस्स दाहिणे छक्कोडिसए पणपन्नं च कीडीओ पणतीसं च सतसहस्साइं पण्णासं च सहस्साइं अरुणोदए समुद्दे तिरियं वीइवइत्ता, अहे य रतणप्पभाए पुढवीए चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुर-रण्णो चमरचंचा नामं रायहाणी पण्णत्ता, एगं जोयणसतसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं जंबुद्दीवपमाणा। ओवारियलेणं सोलस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, पन्नासं जोयणसहस्साइं पंच य सत्ताणउए जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, सव्वप्पमाणं वेमाणियप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं।

(वियाहपण्णत्तिसुत्तं, शतक २ उद्देशक ८)

[३३] ते णं पासायवडेंसया पणवीसं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिय वण्णओ।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६२)

[३४] (i) तस्स णं मूलपासायवडेंसयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सभा सुहम्मा पण्णत्ता, एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खम्भेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखम्भ···· जाव अच्छरगण·····पासादीया।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६३)

(ii) तस्स णं मूलपासायवडेंसगस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, एत्थ णं विजयस्स देवस्स सभा सुधम्मा पण्णत्ता, अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं छ सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं णव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसन्निविट्ठा।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, १३७ [i])

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३५] तिदिसिं होंति सुहम्माए तिन्नि दारा उ अट्ठ ८ उव्विद्धा ।
विक्खंभो य पवेसो य जोयणा तेसि चत्तारि ४ ॥

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १९०)

[३६] तेसिं पुरओ मुहमंडवा उ, पेच्छाघरा य तेसु भवे ।
पेच्छाघराण मज्झे अक्खाडा आसणा रम्मा ॥

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १९१)

[३७] पेच्छाघराण पुरओ थूभा, तेसिं चउद्दिसिं होंति ।
पत्तेय पेढियाओ, जिणपडिमा एत्थ पत्तेयं ॥

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १९२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३५] (i) सभाए णं सुहम्माए तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता तं जहा-पुरत्थिमेणं, दाहिणेणं, उत्तरेणं। ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठ जोयणाइं विक्खम्भेण, तावतियं चेव पवेसेणं, सेया वरकणगथूभियागा जाव वणमालाओ।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६४)

(ii) तीसे णं सुहम्माए सभाए तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता। ते णं दारा पत्तेयं पत्तेयं दो दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगं जोयणं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेण सेया वरकणगथूभियागा जाव वणमालादार-वण्णओ।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३७ [ii])

[३६] (i) तेसि णं दाराणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं मुहमण्डवे पण्णत्ते,.....। तेसि णं मुहमंडवाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं पेच्छाघरमंडवे पण्णत्ते,.....। तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झ-देसभाए पत्तेयं-पत्तेयं वइरामए अक्खाडए पण्णत्ते।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६४-१६५)

(ii) तेसि णं दाराणं पुरओ मुहमंडवा पण्णत्ता।.....तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ पत्तेयं-पत्तेयं पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता,..... तेसिं णं बहुमज्झ देसभाए पत्तेयं-पत्तेयं वइरामयअक्खाडगा पण्णत्ता।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३७ [२])

[३७] (i) तेसिं णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ पत्तेय-पत्तेय मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।.....तासि णं उवरिं पत्तेयं-पत्तेयं थूभे पण्णत्ते। .....तेसिं णं थूभाणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं मणि-पेढियातो पण्णत्ताओ।.....तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिण-पडिमातो जिणुस्सेहपमाणमेत्ताओ संपलियंकनिसन्नाओ, थूभाभिमुहीओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६६)

(ii) तेसिं णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ तिदिसिं तओ मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।.....तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं-पत्तेयं चेइयथूभा पण्णत्ता।.....तेसिं णं चेइयथूभाणं चउद्दिसिं पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।..... मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं-पत्तेयं चत्तारि जिणपडिमाओ जिणुस्सेह पमाणमे-त्ताओ पलियंकणिसन्नाओ थूभाभिमुहीओ सन्निविट्ठाओचिट्ठंति।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३७ [२])

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३८] थूभाण होंति पुरओ [य] पेढिया, तत्थ चेइयदुमा उ ।
चेइयदुमाण पुरओ उ पेढियाओ मणिमईओ ॥

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १९३)

[३९] तासुप्परिं महिंदज्झया य, तेसु पुरओ भवे नंदा ।
दसजोयण १० उव्वेहा, हरओ वि दसेव १० वित्थिण्णो ॥

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १९४)

[४०] बहुमज्झदेसे पेढिय, तत्थेव य माणवो भवे खंभो ।
चउवीसकोडिमंसिय बारसमद्धं च हेट्ठुवरिं ॥

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १९६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३८] (i) तेसि णं थूभाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ ·····। तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं-पत्तेयं चेइयरूक्खे पण्णत्ते।·····तेसि णं चेइयरूक्खाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६७-१६८)

(ii) तेसि णं चेइयथूभाणं पुरओ तिदिसिं पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।·····तासिं णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चेइयरूक्खा पण्णत्ता।·····तेसिं णं चेइयरूक्खाणं पुरओ तिदिसिं तओ मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३७ [३]-१३७ [४])

[३९] (i) तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं-पत्तेयं महिंदज्झए पण्णत्ते। ·····तेसि णं महिंदज्झयाणं उवरिं अट्ठट्ठ मंगलया झया छत्तातिछत्ता। तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं नंदा पुक्खरिणीओ पण्णात्ताओ। ताओ णं पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेण, दस जोयणाइं उव्वेहेण, अच्छाओ जाव वण्णओ।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६९-१७०)

(ii) तासिं ण मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं-पत्तेयं महिंदझये पण्णत्ते। ·····तेसिं णं महिंदज्झयाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता। तेसिं णं महिंदज्झयाणं पुरओ तिदिसिं तओ णंदाओ पुक्खरणीओ पण्णत्ताओ। ताओ णं पुक्खरणीओ अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं सक्कोसाइं छजोयणाइं विक्खंभेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ पुक्खरिणीवण्णओ।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३७ [४])

[४०] (i) तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं माणवए चेइएखंभे पण्णत्ते, सट्ठिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जोयणं उव्वेहेणं, जोयणं विक्खंभेणं, अडयालीसंसिए, अडयालीसइ कोडीए, अडयालीसइ विग्गहिए सेसं जहा महिंदज्झयस्स।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १७४)

(ii) तीसे णं मणिपीढियाए उप्पिं एत्थ णं माणवए णाम चेइयखंभे पण्णत्ते, अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं छकोडीए छलंसे छविग्गहिए वइरामयवट्टलट्ठसंठिए, एवं जहा महिंदज्झयस्स वण्णओ जाव पासाईए।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४१] फलया, तहियं नागदंतया य, सिक्का तहिं [च] वइरमया।
तत्थ उ होंति समुग्गा, जिणसकहा तत्थ पन्नत्ता ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १९७)

[४२] माणवगस्स य पुव्वेण आसणं, पच्छिमेण सयणिज्जं।
उत्तरओ सयणिज्जस्स होइ इंदज्झओ तुंगो ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १९८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४१] (i) माणवगस्स णं चेइयखंभस्स उवरिं बारस जोयणाइं ओगाहेत्ता, हेट्ठावि बारस जोयणाइं वज्जेत्ता, मज्झे छत्तीसाए जोयणेसु एत्थ णं बहवे सुवण्णरूप्पमया फलगा पण्णत्ता। तेसु णं सुवण्णरूप्पाएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता। तेसु णं वइरामएसु नागदंतेसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता। तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वइरामया गोलवट्टसमुग्गया पण्णत्ता। तेसु णं वयरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिणसकहातो संनिक्खित्ताओ चिट्ठंति।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १७४)

(ii) तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्सं उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता हेट्ठावि छक्कोसे वज्जित्ता मज्झे अद्धपंचमेसु जोयणेसु एत्थ णं बहवे सुवण्णरूप्पमया फलगा पण्णत्ता। तेसु णं सुवण्णरूप्पमएसु फलगेसु बहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता। तेसु णं वइरामएसु णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता। तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वइरामया गोलवट्टसमुग्गका पण्णत्ता। तेसु णं वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१४८)

[४२] (i) तस्स माणवगस्स चेइयखंभस्स पुरत्थिमेण एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता।..... तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ सपरिवारो। तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता,.....तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे देवसयणिज्जे पण्णत्ते।.....तस्स णं देवसयणिज्जस्स उत्तरपुरत्थिमेणं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता,.....तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे खुड्डए महिंदज्झए पण्णत्ते।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १७५-१७६)

(ii) तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं एगा महामणिपेढिया पण्णत्ता....तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते।....तीसे णं मणिपोढियाए उप्पिं एगं महं खुड्डए महिंदज्झए पण्णत्ते॥

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४३] पहरणकोसो इंदज्झयस्स अवरेण इत्थ चोप्पालो ।
फलिहप्पामोक्खाणं निक्खेवनिही पहरणाणं ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १९९)

[४४] जिणदेवछंदओ जिणघरम्मि पडिमाण तत्थ अट्ठसयं १०८ ।
दो दो चमरधरा खलु, पुरओ घंटाण अट्ठसयं १०८ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २००)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४३] (i) तस्स णं खुड्डागमहिंदज्झयस्य पच्चत्थिमेणं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स चोप्पाले नाम पहरणकोसे पण्णत्ते।....तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स फलिहरयण-खग्ग-गया-धणुप्पमुहा बहवे पहरणरयणा संनिक्खित्ता चिट्ठंति।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १७६)

(ii) तस्स णं खुड्डमहिंदज्झयस्य पच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चुप्पालए नाम पहरणकोसे पण्णत्ते तत्थ णं विजयस्स देवस्स फलिहरयणपामोक्खा बहवे पहरणरयणा सन्निक्खित्ता चिट्ठंति।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३८)

[४४] (i) सभाए णं सुहम्माए उत्तरपुरत्थिमेणं यत्थ णं महेगे सिद्धायतणे पण्णत्ते,.....तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता,.....तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे देवछंदए पण्णत्ते,.....एत्थ णं अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताणं संनिक्खित्तं संचिट्ठति।
.....तासि णं जिणपडिमाणं पुरतो अट्ठसयं घंटाणं।.....
सिद्धायतणस्स णं उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा, झया छत्तातिछत्ता॥

(राजप्रश्नीयसूत्र १७७-१७९)

(ii) सभाए णं सुहम्माए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं सिद्धाययणे पण्णत्ते।.....तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता।....तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवच्छंदए पण्णत्ते।....
तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमेत्ताणं सण्णिक्खित्तं चिट्ठइ।.....तासि णं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठसयं घंटाणं, अट्ठसयं चंदणकलसाणं एवं अट्ठसयं भिंगारगाणं।....तस्स णं सिद्धायतणस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छात्ताइछत्ता उत्तिमागारा सोलसविदेहिं रयणेहिं उवसोभिया तंजहा-रयणेहिं जाव रिट्ठेहिं॥

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४५] सेसभाण उ मज्झे हवंति मणिपेढिया परमरम्मा ।
तत्थाऽऽसणा महरिहा, उववायसभाए सयणिज्जं ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २०१)

[४६] मुहमंडव पेच्छाहर हरओ दारा य सह पमाणाइं ।
थूभा उ अट्ठ उ भवे दारस्स उ मंडवाणं तु ॥
उव्विद्धा वीसं, उग्गया य वित्थिण्ण जोयणऽद्धं तु ।
माणवग महिंदझया हवंति इंदज्झया चेव ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २०२-२०३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४५] (i) तस्स णं सिद्धायतणस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगा उववाय-सभा पण्णत्ता, जहा सभाए सुहम्माए तहेव जाव मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं, देवसयणिज्जं तहेव सयणिज्जवण्णओ, अट्ठट्ठ मंगलगा, झया, छात्तातिछत्ता ।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १८०)

(ii) तस्स णं सिद्धायणस्स णं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं उववायसभा पण्णत्ता । जहा सुधम्मा तहेव जाव गोमाणसीओ।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१४०)

[४६] (i) तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता ।.....तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे देवसयणिज्जे पण्णत्ते ।.....तस्स णं देवसयणिज्जस्स उत्तरपुरत्थिमेणं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता ।.....तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे खुड्डुए महिंदज्झए पण्णत्ते, सट्ठिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जोयणं विक्खंभेणं ।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १७५-१७६)

(ii) तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता,.....तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते ।.....तस्स णं देवसय-णिज्जस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ महई एगा मणिपीढिया पण्णत्ता ।.....तीसे णं मणिपीढियाए उप्पिं एगं महं खुड्डुए महिंदज्झए पण्णत्ते, अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं ।

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४७] जिणदुम-सुहम्म-चेइयघरेसु जा पेढिया य तत्थ भवे।
चउजोयण ४ बाहल्ला, अट्ठेव ८ उ वित्थडाऽऽयामा ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २०४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४७] (i) तेसि णं वयरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमाज्झ-देसभागे पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढिया पण्णत्ता। ताओ णं मणिवेढियाओ अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणि-मईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६५)

(ii) तेसि णं चेइयरूक्खाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियाओ अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाअ जाव पडिरूवाओ।

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६८)

(iii) तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महेगा मणि-पेढिया पण्णत्ता—सोलस जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं ॥

(राजप्रश्नीयसूत्र, १७८)

(iv) तेसिं णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेसं मणिपीठिया पण्णत्ता। ताओ णं मणिपीढियाओ जोयणमेगं आयाम-विक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्व-मणिमईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३७ (२))

(v) तेसिं णं चेइयरूक्खाणं पुरओ तिदिसिं तओ मणिपेढियाअ पण्णत्ताओ ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयामविक्खंभेण अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव पडि-रूवाओ ॥

(जीवाजीवाभिगमसूत्र ३/१३७ (४))

(vi) तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमयी अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३९ (१))

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४८] सेसा चउ ४ आयामा, बाहल्लं दोण्णि २ जोयणा तेसिं ।
सव्वे य चेइयदुमा अट्ठेव ८ य जोयणुव्विद्धा ॥
छ ६ ज्जोयणाइं विडिमा उव्विद्धा, अट्ठ ८ होंति वित्थिण्णा ।
खंधो वि उ जोयणिओ, विक्खंभोव्वेहओ कोसं ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २०५-२०६)

[४९] दो २ चेव जंबुदीवे, चत्तारि ४ य माणुसुत्तरनगम्मि ।
छ ६ च्चाऽरुणे समुद्दे, अट्ठ ८ य अरुणम्मि दीवम्मि ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २२१)

[५०] असुराणं नागाणं उदहिकुमाराण होंति आवासा ।
अरुणोदए समुद्दे, तत्थेव य तेसि उप्पाया ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २२२)

[५१] दीव-दिसा-अग्गीणं थणियकुमाराण होंति आवासा ।
अरुणवरे दीवम्मि उ, तत्थेव य तेसि उप्पाया ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २३२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४८] (i) तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं-पत्तेयं चेइयरूक्खे पण्णत्ते, ते णं चेइयरूक्खा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहणं, दो जोयणाइं खंधा, अद्धजोयणं विक्खंभेणं, छ जोयणाइं विडिमा, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता ॥

(राजप्रश्नीयसूत्र, १६७)

(ii) तासिं णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं-पत्तेयं चेइयरूक्खा पण्णत्ता । ते णं चेइयरूक्खा अठ्ठ जायणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहेणं दो जोयणाइं खंधो अद्धजोयणं विक्खंभेणं छज्जोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए अठ्ठजोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं अट्ठजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता ॥

(जीवाजीवाभिगमसूत्र, ३/१३७ (३))

[४९] दो चेव जंबुदीवे, चत्तारि य माणुसुत्तरे सेले ।
छ च्चाऽरूणे समुद्दे, अट्ठ य अरूणम्मि दीवम्मि ॥

(देवेन्द्रस्तव, गाथा ४६)

[५०] असुराणं नागाणं उदहिकुमाराण हुंति आवासा ।
अरुणवरम्मि समुद्दे तत्थेव य तेसि उप्पाया ॥

(देवेन्द्रस्तव, गाथा ४८)

[५१] दीव-दिसा-अग्गीणं थणियकुमाराण होंति आवासा ।
अरुणवरे दीवम्मि य, तत्थेव य तेसि उप्पाया ॥

(देवेन्द्रस्तव, गाथा ४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति प्रकीर्णक की विषयवस्तु दिगम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थों में कहाँ एवं किस रूप में उपलब्ध है, इसका तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है—

[१] पुक्खरवरदीवड्ढं परिक्खिवइ माणुसोत्तरो सेलो।
पायारसरिसरूवो विभयंतो माणुसं लोयं॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १)

[२] सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं १७२१ सो समुव्विद्धो।
चत्तारि य तीसाइं मूले कोसं ४३०$\frac{1}{2}$ च ओगाढो॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २)

[३] दस बावीसाइं अहे वित्थिण्णो होइ जोयणसयाइं १०२२।
सत्त य तेवीसाइं ७२३ वित्थिण्णो होइ मज्झम्मि॥
चत्तारि य चउवीसे ४२४ वित्थारो होइ उवरि सेलस्स।
अड्ढाइज्जे दीवे दो वि समुद्दे अणुपरीइ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ३-४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१] (i) कालोदयजगदीदो समंतदो अट्ठलक्खजोयणया ।
गंतूणं तं परिदो परिवेढदि माणुसुत्तरो सेलो ॥
(तिलोयपण्णत्ति, ४/२७४८)

(ii) मानुषक्षेत्रमर्यादा मानुषोत्तरभूभृता ।
परिक्षिप्तस्तु तस्यार्द्धः पुष्करार्द्धस्ततो मतः ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/५७७)

(iii) पुष्करद्वीपमध्यस्थः प्राकारपडिमण्डलः ।
मानुषोत्तरनामा तु सौवर्णः पर्वतोत्तमः ॥
(लोकविभाग, श्लोक ३/६६)

[२] (i) तग्गिरिणो उच्छेहो सत्तरससयाणि एक्कवीसं च ।
तीसब्भहिया जोयणचउस्सया गाढमिगिकोसं ॥
(तिलोयपण्णत्ति , ४/२७४९)

(ii) योजनानां सहस्रं तु सप्तशत्येकविंशतिः ।
उच्छ्रायः सच्छिखस्तस्य मानुषोत्तरभूभृतः ॥
सक्रोशोऽपि च सत्रिंशदवगाहश्चतुः शती ।
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/५९१-५९२)

(iii) शतं सप्तदशाभ्यस्तमेकविंशमथोच्छ्रितः ।
अन्तश्छिन्नतटो बाह्यं पार्श्वं तस्य क्रमोन्नतम् ॥
(लोकविभाग, श्लोक ३/६७)

[३] (i) जोयणसहस्समेक्कं बावीसं सगसयाणि तेवीसं ।
चउसयचउवीसाइं कमरूंदा मूलमज्झसिहरेसुं ॥
(तिलोयपण्णत्ति, ४/२७५०)

(ii) द्वाविंशत्या सहस्रं तु मूलविस्तार इष्यते ।
त्रयोविंशतियुक्तानि मध्ये सप्त शतानि तु ।
विस्तारोऽस्योपरि प्रोक्तश्चतुर्विंशाश्चतुःशती ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/५९२-५९३)

(iii) मूले सहस्रं द्वाविंशं चतुर्विंशं चतुर्विंशं चतुःशतम ।
अग्रे मध्ये च विस्तारस्त [द्] द्वयार्धमिति स्मृतः ॥
(लोकविभाग, श्लोक ३/६८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४] तस्सुवरि माणुसनगस्स कूडा दिसि विदिसि होंति सोलस उ।
तेसिं नामावलियं अहक्कम्मं कित्तइस्सामि ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५)

[५] पुव्वेण तिण्णि कूडा, दक्खिणओ तिण्णि, तिण्णि अवरेणं।
उत्तरओ तिण्णि भवे चउद्दिसिं माणुसनगस्स ॥
वेरुलिय १ मसारे २ खलु तहऽस्सगब्भे ३ य होंति अंजणगे ४।
अंकामए ५ अरिट्ठे ६ रयए ७ तह जायरूवे ८ य ॥
नवमे य सिलप्पवहे ९ तत्तो फलिहे १० य लोहियक्खे ११ य।
वइरामए य कूडे १२, परिमाणं तेसि वुच्छामि ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ६-८)

[६] एएसिं कूडाणं उस्सेहो पंच जोयणसयाइं ५००।
पंचेव जोयणसए ५०० मूलम्मि उ होंति वित्थिन्ना ॥
तिन्नेव जोयणसए पन्नत्तरि ३७५ जोयणाइं मज्झम्मि।
अड्ढाइज्जे य सए २५० सिहरतले वित्थडा कूडा ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ९-१०)

[७] दक्खिणपुव्वेण रयणकूडा(? डं) गरुलस्स वेणुदेवस्स।
सव्वरयणं तु पुव्वुत्तरेण तं वेणुदालिस्स ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४] (i) उवरिम्मि माणुसुत्तरगिरिणो बावीस दिव्वकूडाणिं ।
पुव्वादि चउदिसासुं पत्तेक्कं तिण्णि तिण्णि चेट्ठंति ।।
(तिलोयपण्णत्ति, ४/२७६५)

(ii) तत्प्रदक्षिणवृत्तानि प्राच्यादिषु दिशासु च ।
इष्टदेशनिविष्टानि कूटान्यष्टादशाचले ।।
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/५९९)

(iii) त्रीणि त्रीणि तु कूटानि प्रत्येकं दिक्चतुष्टये ।
पूर्वयोर्विदिशोश्चैव तान्याष्टादश पर्वते ।।
(लोकविभाग, श्लोक ३/)

[५] वेरूलिअसुमगब्भा सउगंधी तिण्णि पुव्वदिब्भाए ।
रूजगो लोहियअंजणणामा दक्खिणविभागम्मि ।
अंजणमूलं कणयं रजदं णामेहि पच्छिमदिसाए ।
फडिहंकपवालाइं कूडाइं उत्तरदिसाए ।।
तवणिज्जरयणणामा कूडाइं दोण्णि वि हुदासणदिसाए ।
ईसाणदिसाभाए पहंजणो वज्जणामो त्ति ।।
एक्को च्चिय वेलंबो कूडो चेट्ठेदि मारुददिसाए ।
णइरिदिदिसाविभागे णामेणं सव्वरयणो त्ति ।।
पुव्वादिचउदिसासुं वण्णिदकूडाण अग्गभूमीसुं ।
एक्केक्कसिद्धकूडा होंति वि मणुसुत्तरे सेले ।।
(तिलोयपण्णत्ति, ४/२७६६-२७७०)

[६] (i) गिरिउदयचउब्भागो उदयो कूडाण होदि पत्तेक्कं ।
तेत्तियमेत्तो रूंदो मूले सिहरे तदद्धं च ।।
मूलसिहराण रूंदं मेलिय दलिदम्मि होदि जं लद्धं ।
पत्तेक्कं कूडाणं मज्झिमविक्खंभपरिमाणं ।।
(तिलोयपण्णत्ति, ४/२७७१-२७७२)

(ii) तानि पञ्चशतोत्सेधमूलविस्तारवन्ति तु ।
शते चार्द्धतृतीये द्वे विस्तृतान्यपि चोपरि ।।
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६००)

[७] निषधस्पृष्टभागस्थे रत्नाख्ये पूर्वदक्षिणे ।
वेणुदेव इति ख्यातः पन्नगेन्द्रो वसत्यसौ ।
नीलाद्रिस्पृष्टभागस्थे पूर्वोत्तरदिगावृते ।!
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६०७-६०८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[८] रयणस्स अवरपासे तिण्णि वि समइच्छिऊण कूडाइं ।
कूडं वेलंबस्स उ विलंबसुहियं सया होइ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १७)

[९] सव्वरयणस्स अवरेण तिण्णि समइच्छिऊण कूडाइं ।
कूडं पभंजणस्सा पभंजणं आढियं होइ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १८)

[१०] तेवट्ठं कोडिसयं चउरासीइं च सयसहस्साइं १६३८४००००० ।
नंदीसरवरदीवे विक्खंभो चक्कवालेणं ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २५)

[११] एगासि एगनउया पंचाणउइं भवे सहस्साइं ।
तिण्णेव जोयणसए ८१९१९५३०० ओगाहित्ताण अंजणगा ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २६)

[१२] चुलसीइ सहस्साइं ८४००० उव्विद्धा, ते गया सहस्समहे १००० ।
धरणियले वित्थिण्णा अणूणगे ते दस सहस्से १०००० ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा २७)

[१३] अंजणगपव्वयाण उ सयस्सहस्सं १००००० भवे अबाहाए ।
पुव्वाइआणुपुव्वो पोक्खरणीओ उ चत्तारि ॥
पुव्वेण होइ नंदा १ नंदवई दक्खिणे दिसाभाए २ ।
अवरेण य णंदुत्तर ३ नंदिसेणा उ उत्तरओ ४ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ४१-४२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[८] निषधस्पृष्टभागस्थ दक्षिणापरदिग्गतम् ।
वेलम्बं चातिवेलम्बो वरुणोऽधिवसत्यसौ ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६०९)

[९] नीलाद्रिस्पृष्टभागस्थमपरोत्तरदिग्गतम् ।
प्रभञ्जनं तु तन्नामा वोतन्द्रोऽधिवसत्यसौ ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६१०)

[१०] (i) कोटीशतं त्रिषष्ट्यग्रमशीतिश्चतुरुत्तराः ।
लक्षा नन्दीश्वरद्वीपो विस्तीर्णो वर्णितो जिनैः ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६४७)

(ii) चतुरशीतिश्च लक्षाणि त्रिषष्टिशतकोटयः ।
नन्दीश्वरवरद्वीपविस्तारस्य प्रमाणकम् ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/३२)

[११] (i) मध्ये तस्य चतुर्दिक्ष चत्वारोऽञ्जनपर्वताः ।
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६५२)

(ii) तस्य मध्येऽञ्जनाः शैलाश्चत्वारो दिक्चतुष्टये ।
(लोकविभाग, श्लोक ३७)

[१२] (i) तुङ्गाश्चतुरशीतिं ते व्यस्ताश्चाधः सहस्तगाः ।
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६५२)

(ii) सहस्राणामशीतिश्च चत्वारि च नगोच्छ्रितिः ।
उच्छ्येण समो व्यासो मूले मध्ये च मूर्धनि ।
सहस्रमवगाढश्च वज्रमूला प्रकीर्तिताः ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/३७-३८)

[१३] (i) गत्वा योजनलक्षाः स्युर्महादिक्षु महीभृताम् ।
चतस्रस्तु चतुष्कोणा वाप्यः प्रत्येकमक्षयाः ॥
नन्दा नन्दवती चान्या वापी नन्दोत्तरा परा ।
नन्दीघोषा च पूर्वोर्देदिक्षु प्राच्यादिषु स्थिताः ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६५५, ६५८)

(ii) पूर्वाञ्जनगिरेर्दिक्षु नन्दा नन्दवतीति च ।
नन्दोत्तरा नन्दिषेणा इति प्राच्यादिवापिकाः ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४] एगं च सयसहस्सं १००००० वित्थिण्णाओ सहस्समोविद्धा १०००।
निम्मच्छ-कच्छभाओ जलभरियाओ अ सव्वाओ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ४३)

[१५] पुक्खरणीण चउदिसिं पंचसए ५०० जोयणाणऽबाहाए।
पुव्वाइआणुपुव्वी चउद्दिसिं होंति वणसंडा ॥
पागारपरिक्खित्ता सोहंते ते वणा अहियरम्मा।
पंचसए ५०० वित्थिन्ना, सयस्सहस्सं १००००० च आयामा ॥
पुव्वेण असोगवणं, दक्खिणओ होइ सत्तिवन्नवणं।
अवरेण चंपयवणं, चूयवणं उत्तरे पासे ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ४४-४६)

[१६] रयणमुहा उ दहिमुहा पुक्खरणीणं हवंति मज्झम्मि।
दस चेव सहस्सा १०००० वित्थरेण, चउसट्ठि ६४ मुव्विद्धा ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ४८)

[१७] जो दक्खिणअंजणगो तस्सेव चउद्दिसिं च बोद्धव्वा।
पुक्खरिणी चत्तारि वि इमेहिं नामेहि विन्नेया ॥
पुव्वेण होइ भद्दा १, होइ सुभद्दा उ दक्खिणे पासे २।
अवरेण होइ कुमुया ३, उत्तरओ पुंडरिगिणी उ ४ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५२-५३)

[१८] अवरेण अंजणो जो उ होइ तस्सेव चउदिसिं होंति।
पुक्खरिणीओ, नामेहिं इमेहिं चत्तारि विन्नेया ॥
पुव्वेण होइ विजया १, दक्खिणओ होइ वेजयंती उ २।
अवरेणं तु जयंती ३, अवराइय उत्तरे पासे ४ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५४-५५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४] (i) सहस्रपत्तसञ्छन्नाः स्फटिकस्वच्छवारयः ।
विचित्रमणिसोपाना विनक्राधाः सवेदिकाः ॥
अवगाहः पुनस्तासां योजनानां सहस्रकम् ।
आयामोऽपि ज विष्कम्भो जम्बूद्वीपप्रमाणकः ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६५६-६५७)

(ii) एकैकनियुतव्यासा मुखमध्यान्तमानतः ।
नानारत्नजटा वाप्यो वज्रभूमिप्रतिष्ठिताः ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/४०)

[१५] (i) परितस्ताश्चतस्तोऽपि वापीर्वनचतुष्टयम् ।
प्रत्येकं तत्समायामं तदर्द्धव्याससङ्गतम ॥
प्रागशोकवनं तत्र सप्तपर्णवनं त्वपाक् ।
स्माच्चम्पकवनं पत्यक् चूतवृक्षवनं ह्युदक् ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६७१-६७२)

(ii) अशोकं सप्तवर्णं च चम्पकं चूतमेव च ।
चतुर्दिशं तु वापीनां प्रतितीरं वनान्यपि ।
व्यस्तानि नियुतार्धं च नियुतं चायतानि तु ।
सर्वाण्येव वनान्याहुर्वेदिकान्तानि सर्वतः ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/४५-४६)

[१६] षोडशानां च वापीनां मध्ये दधिमुखादयः ।
सहस्राणि दशोद्विद्धास्तावत्सर्वत्र विस्तृताः ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/४७)

[१७] (i) विजया वैजयन्ती च जयन्ती चापराजिता ।
दक्षिणाञ्जनशैलस्य दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६६०)

(ii) अरजा विरजा चान्या अशोका वीतशोकका ।
दक्षिणस्याञ्जनस्याद्रेः पूर्वाद्याशातुष्टये ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/४१)

[१८] (i) पाश्चात्याञ्जनशैलस्य पूर्वादिदिगवस्थिताः ।
अशोका सुप्रबुद्धा च कुमुदा पुण्डरीकिणी ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६६२)

(ii) विजया वैजयन्ती च जयन्त्यन्यापराजिता ।
अपरस्याञ्जनस्याद्रेः पूर्वाद्याशाचतुष्टये ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/४२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१९] जो उत्तरअंजणगो तस्सेव चउद्दिसिं च बोद्धव्वा ।
पुक्खरिणीओ चत्तारि, इमेहिं नामेहिं विन्नेया ॥
पुव्वेण नंदिसेणा १, आमोहा पुण दक्खिणे दिसाभाए २ ।
अवरेणं गोत्थूभा ३ सुदंसणा होइ उत्तरओ ४ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५६-५७)

[२०] एक्कासि एगनउया पंचाणउइं भवे सहस्साइं ८१९१९५०००।
नंदीसरवरदीवे ओगाहित्ताण रइकरगा ॥
उच्चत्तेण सहस्सं १०००, अड्ढाइज्जे सए य उव्विद्धा २५० ।
दस चेव सहस्साइं १०००० वित्थिण्णा होंति रइकरगा ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ५८-५९)

[२१] कोंडलवरस्स मज्झे णगुत्तमो होइ कुंडलो सेलो ।
पागारसरिसरूवो विभयंतो कोंडलं दीवं ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ७२)

[२२] बायालीस सहस्से ४२००० उव्विद्धो कुंडलो हवइ सेलो ।
एगं चेव सहस्सं १००० धरणियलमहे समोगाढो ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ७३)

[२३] दस चेव जोयणसए बावीसं १०२२ वित्थडो य मूलम्मि ।
सत्तेव जोयणसए तेवीसे ७२३ वित्थडो मज्झे ॥
चत्तारि जोयणसए चउवीसे ४२४ वित्थडो उ सिहरतले ।
एयस्सुवरिं कूडे अहक्कमं कित्तइस्सामि ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ७४-७५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१९] (i) उदीच्याञ्जनशैलस्य प्राच्याद्या सुप्रभङ्करा।
सुमनाश्च दिशासु स्यादानन्दा च सुदर्शना॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६६४)

(ii) रम्या च रमणीया च सुप्रभा चापरा भवेत्।
उत्तरा सर्वतोभद्रा इत्युत्तरगिरिश्रिताः॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/४३)

[२०] (i) वापीकोणसमीपस्था नगा रतिकराभिधाः।
स्युः प्रत्येकं तु चत्वारः सौवर्णाः पटहोपमाः॥
गाढाश्चार्द्धतृतीयं ते योजनानां शतद्वयम्।
सहस्रोत्सेधविस्तारव्यायामा व्यवर्जिताः॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६७३-६७४)

(ii) वापीनां बाह्यकोणेषु दृष्टा रतिकराद्रयः।
समा दधिमुखैर्हैमाः सर्वे द्वात्रिंशदेव ते॥
जोयणसहस्सवासा तेत्तियमेत्तोदया य पत्तेक्कं।
अड्ढाइज्जसयाइं अवगाढा रतिकरा गिरिणो॥
ते चउ-चउकोणेसुं एक्केक्कदहस्स होंति चत्तारि।
लोयविणिच्छ [य] कत्ता एवं णियमा परूवेंति॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/४९)

[२१] (i) यत्कुण्डलवरो द्वीपस्तन्मध्ये कुण्डलो गिरिः।
वलयाकृतिराभाति सम्पूर्णयवराशिवत्॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६८६)

(ii) द्वीपस्य कुण्डलाख्यस्य कुण्डलाद्रिस्तु मध्यमः।
(लोकविभाग, श्लोक ४/६०)

[२२] (i) सहस्रंमवगाहोऽस्य द्विचत्वारिंशदुच्छितिः।
योजनानां सहस्राणि मणिप्रकरभासिनः॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६८७)

(ii) पञ्चसप्ततिमुद्विद्धः सहस्राणां महागिरिः।
(लोकविभाग, श्लोक ४/६०)

[२३] (i) सहस्र विस्तृतिस्त्रेधा दशसप्तचतुर्गुणम्।
द्वात्रिंशं च त्रयोविंशं चतुर्विंशं प्रभृत्यधः॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६८८)

(ii) मानुषोत्तरविष्कम्भाद् व्यासो दसगुणस्य च।
(लोकविभाग, श्लोक ४/६१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२४] पुव्वेण होंति कूडा चत्तारि उ, दक्खिणे वि चत्तारि ।
अवरेण वि चत्तारि उ, उत्तरओ होंति चत्तारि ॥
(द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, गाथा ७६)

[२५] वइरपभ १ वइरसारे २ कणगे ३ कणगुत्तमे ४ इ य ।
रत्तप्पभे ५ रत्तधाऊ ६ सुप्पभे ७ य महप्पभे ८ ॥
मणिप्पभे ९ य मणिहिये १० रुयगे ११ एगवंडिसए १२ ।
फलिहे १३ य महाफलिहे १४ हिमवं १५ मंदिरे १६ इ य ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ७७-७८)

[२६] एएसिं कूडाणं उस्सेहो पंच जोयणसयाइं ५०० ।
पंचेव जोयणसए ५०० मूलम्मि उ वित्थडा कूडा ॥
तिन्नेव जोयणसए पन्नत्तरि ३७५ जोयणाइं मज्झम्मि ।
अड्ढाइज्जे य सए २५० सिहरतले वित्थडा कूडा ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ७९-८०)

[२७] रुयगवरस्स य मज्झे णगुत्तमो होइ पव्वओ रुयगो ।
पागारसरिसरूवो रुयगं दीवं विभयमाणो ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ११२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२४] (i) प्रत्येकं तस्य चत्वारि पूर्वाद्याशासु मूर्धनि।
भान्ति षोडश कूटानि सेवितानि सुरैः सदा॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६८९)

(ii) तस्य षोडशकूटानि चत्वारि प्रतिदिशं क्रमात्।
(लोकविभाग, श्लोक ४/६१)

[२५] (i) पूर्वस्यां त्रिशिरा वज्रे दिशि पञ्चशिराः सुरः।
कूटे वज्रप्रभे ज्ञेयः कनके च महाशिराः॥
महाभुजोऽपि तस्यां स्यात् कूटे तु कनकप्रभे।
पद्मपद्मोत्तरोऽपाच्यां रजते रजतप्रभे॥
सुप्रभे तु महापद्मो वासुकिश्च महाप्रभे।
अपाच्यामेव वाच्यौ तौ प्रतीच्यां तु सुरा इमे॥
हृदयान्तस्थिरोऽप्यङ्के महानङ्कप्रभेऽप्यसौ।
श्रीवृक्षो मणिकूटे तु स्वस्तिकश्च मणिप्रभे॥
सुन्दरश्च विशालक्षः स्फटिके स्फटिकप्रभे।
महेन्द्रे पाण्डुकस्तुर्यः पाण्डुरो हिमवत्युदक्॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६९०-६९४)

(ii) वज्रं वज्रप्रभं चैव कनकं कनकप्रभम।
रजतं रजताभं च सुप्रभं च महाप्रभम्॥
अङ्कमङ्कप्रभं चेति मणिकूटं मणिप्रभं।
रुचकं रुचकाभं च हिमवन्मन्दराख्यकम्॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/६२-६३)

[२६] नान्दनैः सममानेषु वेश्मान्यपि समानि तैः।
जम्बूनाम्नि च तेऽन्यस्मिन् विजयस्येव वर्णना॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/६४)

[२७] (i) त्रयोदशस्तु यो द्वीपो रुचकादिवरोत्तरः।
तन्नामा तस्य मध्यस्थः पर्वतो वलयाकृतिः॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/६९९)

(ii) द्वीपस्त्रयोदशो नाम्ना रुचकस्तस्य मध्यमः।
अद्रिश्च वलयाकारो रुचकस्तापनीयकः॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/६८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२८] रुयगस्स उ उस्सेहो चउरासीई भवे सहस्साइं ८४०००।
एगं चेव सहस्सं १००० धरणियलमहे समोगाढो॥
दस चेव सहस्सा खलु बावीसं १००२२ जोयणाइं बोद्धव्वा।
मूलम्मि उ विक्खंभो साहीओ रुयगसेलस्स॥
सत्तेव सहस्सा खलु बावीसं जोयणाइं बोद्धव्वा।
मज्झम्मि य विक्खंभो रुयगस्स उ पव्वयस्स भवे॥
चत्तारि सहस्साइं चउवीसं ४०२४ जोयणा य बोद्धव्वा।
सिहरतले विक्खंभो रुयगस्स उ पव्वयस्स भवे॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ११३-११६)

[२९] सिहरतलम्मि उ रुयगस्स होंति कूडा चउद्दिसिं तत्थ।
पुव्वाइआणुपुव्वी तेसिं नामाइं कित्तेहं॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ११७)

३०] कणगे १ कंचणगे २ तवण ३ दिसासोवत्थिए ४ अरिट्ठे ५ य।
चंदण ६ अंजणमूले ७ वइरे ८ पुण अट्ठमे भणिए॥
नाणारयणविचित्ता उज्जोवंता हुयासणसिहा व।
एए अट्ठ वि कूडा हवंति पुव्वेण रुयगस्स॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा ११९-१२०)

३१] फलिहे १ रयणे २ भवणे ३ पउमे ४ नलिणे ५ ससी ६ य नायव्वे।
वेसमणे ७ वेरुलिए ८ रुयगस्स हवंति दक्खिणओ॥
नाणारयणविचित्ता अणोवमा धंतरूवसंकासा।
एए अट्ठ वि कूडा रुयगस्स हवंति दक्खिणओ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १२१-१२२)

[३२] अमोहे १ सुप्पबुद्धे य २ हिमवं ३ मंदिरे ४ इ य।
रुयगे ५ रुयगुत्तरे ६ चंदे ७ अट्ठमे य सुदंसणे ८॥
नाणारयणविचित्ता अणोवमा धतरूवसंकासा।
एए अट्ठ वि कूडा रुयगस्स वि होंति पच्छिमओ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १२३-१२४)

[३३] विजए १ य वेजयंते २ जयंत ३ अपराइए ४ य बोद्धवे।
कुंडल ५ रुयगे ६ रयणुच्चए ७ य तह सव्वरयणे ८ य॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १२५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२८] (i) सहस्रमवगाहः स्यादशीतिश्चतुरूत्तरा ।
सहस्राण्युच्छ्रितिर्व्यासो द्विचत्वारिंशदस्य तु ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/७००)

(ii) महाञ्जनगिरेस्तुल्यो विष्कम्भेणोच्छ्रयेण ।
(लोकविभाग, श्लोक ४/६९)

[२९] (i) सहस्रयोजनव्यासं दिक्षु पञ्चशतोच्छितम् ।
शिखरे तस्य शैलस्य भाति कूटचतुष्टयम् ॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/७०१)

(ii) तस्य मूर्धनि पूर्वस्यां कूटाश्चाष्टाविति स्मृताः ।
(लोकविभाग, श्लोक ४/६९)

[३०] कनकं काञ्चनं कूटं तपनं स्वतिकं दिशः ।
सुभद्रमञ्जनं मूलं चाञ्जनाद्यं च वज्रकम् ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/७०)

[३१] स्फटिकं रजतं चैव कुमुदं नलिनं पुनः ।
पद्मं च शशिसंज्ञं च ततो वैश्रवणाख्यकम् ॥
वैडूर्यमष्टकं कूटं पूर्वकूटसमानि च ।
दक्षिणस्यामथैतानि दिक्कुमार्योऽत्र च स्थिताः ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/७३-७४)

[३२] (i) अमोघं स्वस्तिकं कूटं मन्दरं च तृतीयकम् ।
ततो हैमवतं कूटं राज्यं राज्योत्तमं ततः ॥
चन्द्रं सुदर्शनं चेति अपरस्यां तु लक्षयेत् ।
रुचकस्य गिरीन्द्रस्य मध्ये कूटानि तेष्विमाः ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/७६-७७)

[३३] विजयं वैजयन्तं च जयन्तमपराजितम् ।
कण्डलं रूचकं चैव रत्नवत्सर्वरत्नकम् ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/७९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३४] नंदुत्तरा १ य नंदा २ आणंदा ३ तह य नंदिसेणा ४ य ।
विजया ५ य वेजयंती ६ जयंति ७ अवराइया ८ चेव ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १२८)

[३५] लच्छिमई १ सेसमई २ चित्तगुत्ता ३ वसुंधरा ४ ।
समाहारा ५ सुप्पदिन्ना ६ सुप्पबुद्धा ७ जसोधरा ८ ॥
एयाओ दक्खिणेणं हवंति अट्ठ वि दिसाकुमारीओ ।
जे दक्खिणेण कूडा अट्ठ वि रुयगे तहिं एया ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १३०-१३१)

[३६] इलादेवी १ सुरादेवी २ पुहई ३ पउमावई ४ य विन्नेया ।
एगनासा ५ णवमिया ६ सीया ७ भद्दा ८ य अट्ठमिया ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा१३२)

[३७] अलंबुसा १ मीसकेसी २ पुंडरगिणी ३ वारुणी ४ ।
आसा ५ सव्वप्पभा ६ चेव सिरि ७ हिरी ८ चेव उत्तरओ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १३४)

[३८] पुव्वेण होइ विमलं १ सयंपहं दक्खिणे दिसाभाए २ ।
अवरे पुण पच्छिमओ (?) ३ णिच्चुज्जोयं च उत्तरओ ४ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १४५)

[३९] चित्ता १ य चित्तकणगा २ सतेरा ३ सोयामणी ४ य णायव्वा ।
एया विज्जुकुमारी साहियपलिओवमट्ठितिया ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १४७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३४] विजयाद्याश्चतस्त्रश्च नन्दा नन्दवतीति च।
नन्दोत्तरा नन्दिषेणा तेष्वष्टौ दिक्सुरस्त्रियः॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/७२)

[३५] इच्छा नाम्ना समाहारा सुप्रतिज्ञा यशोधरा।
लक्ष्मी शेषवती चान्या चित्रगुप्ता वसुंधरा॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/७५)

[३६] इलादेवी सुरादेवी पृथिवी पद्मवत्यपि।
एकनासा नवमिका सीता भद्रेति चाष्टमी॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/७८)

[३७] अलंबूषा मिश्रकेशी तृतीया पुण्डरीकिणी।
वारूण्याशा च सत्या च ह्री श्रीश्चैतेषु देवताः॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/८०)

[३८] पूर्वे तु विमलं कूटं नित्यालोकं स्वयंप्रभम्।
नित्योद्योतं तदन्तः स्युस्तुल्यानि गृहमानकैः॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/८३)

[३९] (i) दिक्षु चत्वारि कूटानि पुनरन्यानि दीप्तिभिः।
दीपिताशान्तराणि स्युः पूर्वादिषु यथाक्रमम्॥
पूर्वस्यां विमले चित्रा दक्षिणस्यां तथा दिशि।
देवी कनकचित्राख्या नित्यालोकेऽवतिष्ठते॥
त्रिशिरा इति देवी स्यादपरस्यां स्वयम्प्रभे।
सूत्रामणिरूदीच्यां च नित्योद्योते वसत्यसौ॥
विद्युत्कुमार्य एतास्तु जिनमातृसमीपगाः।
तिष्ठन्त्युद्योतकारिण्यो भानुदीधितयो तथा॥
(हरिवंशपुराण, श्लोक ५/७१८-७२१)

(ii) कनका विमले कूटे दक्षिणे च शतह्रदा।
ततः कनकचित्रा च सौदामिन्युत्तरे स्थिताः॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/८४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४०] पियदंसणे १ पभासे २ काले देवे १ तहा महाकाले २।
पउमे १ य महापउमे २, सिरीधरे १ महिधरे २ चेव ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १५७)

[४१] पभे १ य सुप्पभे २ चेव, अग्गिदेवे १ तहेव अग्गिजसे २।
कणगे १ कणगप्पभे २ चेव, तत्तोकंते १ य अइकंते २ ॥
दामड्ढी १ हरिवारण २ ततो सुमणे १ य सोमणंसे २ य।
अविसोग १ वियसोगे २ सुभद्दभद्दे १ सुमणभद्दे २ ॥
(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, गाथा १५८-१५९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४०] द्वीपस्स प्रथमस्यास्य व्यन्तरोऽनादरः प्रभुः।
सुस्थिरो लवणस्यापि प्रभासप्रियदर्शनौ॥
कालश्चैव महाकालः कालोदे दक्षिणोत्तरौ।
पद्मश्च पुण्डरीकश्च पुष्कराधिपती सुरौ॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/२४-२५)

[४१] चक्षुष्मांश्च सुचक्षुश्च मानुषोत्तर पर्वते।
द्वौ द्वावेवं सुरौ वेद्यौ द्वीपे तत्सागरेऽपि च॥
श्रीप्रभ श्रीधरौ देवौ वरुणो वरुणप्रभः।
मध्यश्च मध्यमश्चोभौ वारुणीवरसागरे॥
पाण्ड(ण्डु)रः पुष्पदन्तश्च विमलो विमलप्रभः।
सुप्रभस्य(श्च) घृताख्यस्य उत्तरश्च महाप्रभः॥
कनकः कनकाभश्च पूर्णः पूर्णप्रभस्तथा।
गन्धश्चान्यो महागन्धो नन्दी नन्दिप्रभस्तथा॥
भद्रश्चैव सुभद्रश्च अरूणश्चारूणप्रभः।
सुगन्धः सर्वगन्धश्च अरूणोदे तु सागरे॥
एवं द्वीपसमुद्राणां द्वौ द्वावधिपती स्मृतौ।
दक्षिणः प्रथमोक्तोऽत्र द्वितीयश्चोत्तरापतिः॥
(लोकविभाग, श्लोक ४/२६-३१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीपसागर प्रज्ञप्ति की विषयवस्तु का आगम एवं आगम तुल्य मान्य अन्य ग्रन्थों के साथ किए गए इस तुलनात्मक विवेचन से स्पष्ट होता है कि मानुषोत्तर पर्वत का उल्लेख स्थानांगसूत्र, सूर्यप्रज्ञप्ति, तिलोयपण्णत्ति, हरिवंशपुराण एवं लोकविभाग आदि ग्रन्थों में हुआ है। मानुषोत्तर पर्वत की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई तथा उसकी जमीन में गहराई आदि के विवेचन को लेकर इन ग्रन्थों में कोई भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती है, किन्तु मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर स्थित शिखरों की संख्या इन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न बताई गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर सोलह शिखर होना माना गया है (५)। किन्तु तिलोयपण्णत्ति, लोकविभाग तथा हरिवंश पुराण में ऐसे शिखरों की संख्या भिन्न-भिन्न बतलाई गई है। तिलोयपण्णत्ति में इन शिखरों की संख्या बाईस तथा लोकविभाग व हरिवंश पुराण में इनकी संख्या अठारह मानी गई है। पूर्वादि चारों दिशाओं में अनुक्रम से चार-चार शिखर होना सभी ग्रन्थों में समान रूप से स्वीकार किया गया है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में यद्यपि सोलह शिखरों का उल्लेख हुआ है, किन्तु नाम केवल बारह शिखरों के ही बतलाए गए हैं (६-७)। शेष चार शिखरों के नामों का उक्त ग्रन्थ में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया गया है। तिलोयपण्णत्ति में जो बाईस शिखरों का उल्लेख हुआ है उस अनुसार चारों दिशाओं में तीन-तीन, दो अग्निदिशा में, दो ईशान दिशा में, एक वायव्य दिशा में तथा एक शिखर नैत्तृव्य दिशा में है। शेष चार शिखरों के विषय में कहा है कि ये शिखर चारों दिशाओं में बतलाए गए शिखरों की अग्रभूमियों में एक-एक हैं। लोकविभाग तथा हरिवंश पुराण में इन शिखरों की संख्या यद्यपि अठारह मानी गई हैं किन्तु ये शिखर कहाँ स्थित है, इस विषयक दोनों ग्रन्थों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। लोकविभाग के अनुसार चारों दिशाओं तथा ईशान और आग्नेय विदिशाओं में तीन-तीन शिखर स्थित हैं। हरिवंश पुराण के अनुसार चारों दिशाओं में तीन-तीन, ईशान और आग्नेय विदिशाओं में दो-दो तथा नैत्तृव्य और वायव्य विदिशाओं में एक-एक शिखर स्थित है।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में चारों दिशाओं में तीन-तीन शिखर तथा शेष चार शिखर विदिशाओं में स्थित माने हैं, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि कौनसी विदिशा में कितने शिखर हैं। संभव है द्वीपसागरप्रज्ञप्ति के अनुसार प्रत्येक विदिशा में एक-एक शिखर होना चाहिए। हमें यह संभा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वना सत्य के इसलिए करीब लगती है क्योंकि स्थानांगसूत्र में भी चारों विदिशाओं में चार शिखरों का उल्लेख हुआ है।

नन्दीश्वर द्वीप का विस्तार द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, स्थानांगसूत्र, हरिवंश पुराण एवं लोकविभाग आदि ग्रन्थों में १६३८४००००० योजन बतलाया गया है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति तथा स्थानांगसूत्र के अनुसार नन्दीश्वर द्वीप में ८१९१९५३०० योजन जाने पर अंजन पर्वत आते हैं। हरिवंश पुराण तथा लोकविभाग के अनुसार अंजन पर्वत नन्दीश्वर द्वीप के मध्य में हैं।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, स्थानांगसूत्र, समवायांगसूत्र एवं लोकविभाग आदि ग्रन्थों में अंजन पर्वतों की ऊँचाई ८४००० योजन मानी गई है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति तथा स्थानांगसूत्र के अनुसार इन पर्वतों की जमीन में गहराई १००० योजन है तथा इनका विस्तार अधोभाग में १०००० योजन एवं शिखर-तल पर १००० योजन है। लोकविभाग में इन पर्वतों का विस्तार मूल, मध्य व शिखर-तल पर भी ऊँचाई के बराबर अर्थात् ८४००० योजन ही माना गया है। पुनः इन पर्वतों की जमीन में गहराई लोकविभाग में १००० योजन ही मानी गई है।

द्वीपसागर प्रज्ञप्ति और स्थानांगसूत्र में प्रत्येक अंजन पर्वत के शिखर-तल पर जिनमंदिर कहे गये हैं। दोनो ग्रन्थों में जिनमन्दिरों की लम्बाई १०० योजन तथा चौड़ाई ५० योजन मानी गई है, किन्तु ऊँचाई के परिमाण को लेकर दोनों ग्रन्थों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति के अनुसार इन मन्दिरों की ऊँचाई ७५ योजन है जबकि स्थानांगसूत्र में यह ऊँचाई ७२ योजन मानी गई है।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, स्थानांगसूत्र, जीवाजीवाभिगमसूत्र, हरिवंश पुराण तथा लोकविभाग के अनुसार अंजन पर्वत के १००००० योजन अपान्तराल के पश्चात् पूर्वादि अनुक्रम से चारों दिशाओं में १००००० योजन वाली चार-चार पुष्करिणियाँ हैं। यद्यपि इन सभी ग्रन्थों में यह माना गया है कि इन पुष्करिणियों की चारों दिशाओं में क्रमशः चार-चार वनखण्ड हैं किन्तु वनखण्डों का परिमाण सभी ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न बतलाया गया है। द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में इन वनखण्डों की लम्बाई १००००० योजन तथा चौड़ाई मात्र ५०० योजन मानी गई है। जीवाजीवाभिगमसूत्र में लम्बाई सविशेष १२००० योजन तथा चौड़ाई ५०० योजन मानी गई है। हरिवंश पुराण तथा लोकविभाग में इन ननखंडों की लम्बाई १००००० योजन तथा चौड़ाई ५०००० योजन बतलाई गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्करिणियों के मध्य में दधिमुख पर्वत हैं, यह उल्लेख द्वीपसागर-प्रज्ञप्ति, स्थानांगसूत्र, हरिवंश पुराण एवं लोकविभाग आदि ग्रन्थों में मिलता है। इन सभी ग्रन्थों में वनखण्डों की संख्या एवं विस्तार परिमाण भिन्न-भिन्न बतलाया गया है। दधिमुख पर्वतों की संख्या के सन्दर्भ में द्वीपसागर प्रज्ञप्ति तथा स्थानांगसूत्र में कोई उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में यह उल्लिखित है कि दधिमुख पर्वतों का विस्तार १०००० योजन तथा ऊँचाई ६४ (हजार) योजन है। हरिवंशपुराण तथा लोकविभाग के अनुसार दधिमुख पर्वत सोलह हैं तथा इनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई दस-दस हजार योजन है।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में दधिमुख पर्वतों के ऊपर जिनमन्दिर कहे गये हैं जबकि लोकविभाग के अनुसार पुष्करिणियों के बाह्य कोने में दधिमुख पर्वतों के समान ३२ रतिकर पर्वत हैं, उन पर्वतों के ऊपर ५२ जिन-मन्दिर हैं।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, स्थानांगसूत्र, हरिवंशपुराण तथा लोकविभाग आदि ग्रन्थों में यद्यपि यह उल्लिखित है कि चारों दिशाओं वाले अंजन पर्वतों की चारों दिशाओं में चार-चार पुष्करिणियाँ हैं तथापि इनमें से एक भी ग्रन्थ में पूर्व दिशा वाले अंजन पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित पुष्करिणियों का कोई उल्लेख नहीं हुआ है। पुनः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा वाले अंजन पर्वतों की चारों दिशाओं में बताई गई पुष्करिणियों के नाम यद्यपि लगभग समान हैं, किन्तु किस दिशा में कौनसी पुष्करिणियाँ स्थित हैं, इस विषयक इन सभी ग्रन्थों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। द्वीपसागरप्रज्ञप्ति तथा स्थानांगसूत्र में भद्रा आदि जिन चार पुष्करिणियों को दक्षिण दिशा वाले अंजन पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित माना है उन्हें हरिवंशपुराण में पूर्व दिशा वाले अंजन पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित बतलाया है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में जो चार पुष्करिणियाँ पश्चिम दिशा वाले अंजन पर्वत की चारों दिशाओं में मानी गई हैं, उन्हें स्थानांग-सूत्र में उत्तर दिशा में, हरिवंश पुराण में दक्षिण दिशा में तथा लोक-विभाग में पश्चिम दिशा में स्थित अंजन पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित माना गया है। इस प्रकार इन पुष्करिणियों की अवस्थिति को लेकर इन सभी ग्रन्थों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

नन्दीश्वर द्वीप के मध्य में चारों विदिशाओं में चार रतिकर पर्वत हैं, यह उल्लेख द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, स्थानांगसूत्र, हरिवंश पुराण तथा लोक-विभाग आदि ग्रन्थों में मिलता है। इन सभी ग्रन्थों में इन पर्वतों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊँचाई १००० योजन तथा विस्तार १०००० योजन बतलाया गया है।

द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, हरिवंशपुराण तथा लोकविभाग आदि ग्रन्थों के अनुसार कुण्डल द्वीप के मध्य में कुण्डल पर्वत है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति तथा हरिवंशपुराण में इन पर्वतों की ऊँचाई ४२००० योजन तथा जमीन में गहराई १००० योजन मानी गई है। किन्तु लोकविभाग के अनुसार इन पर्वतों की ऊँचाई ७५००० योजन है। तीनों ग्रन्थों में यह भी उल्लिखित है कि कुण्डल पर्वत के ऊपर चारों दिशाओं में चार-चार शिखर हैं। इन शिखरों के नाम भी इन ग्रन्थों में लगभग समान बतलाए गए हैं।

रुचक पर्वत के शिखर तल पर चारों दिशाओं में आठ-आठ शिखर हैं, यह उल्लेख द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, स्थानांगसूत्र एवं लोकविभाग में मिलता है। इन शिखरों के नाम एवं दिशा क्रम भी इन तीनों ग्रन्थों में लगभग समान रूप से निरूपित है। किन्तु हरिवंश पुराण में इन शिखरों का नामोल्लेख नहीं हुआ है।

द्वीपसागर प्रज्ञप्ति तथा व्याख्याप्रज्ञप्ति के अनुसार रुचक समुद्र में असंख्यात् द्वीप-समुद्र हैं। रूचक समुद्र में जाने पर पहले अरुणद्वीप और उसके बाद अरुण समुद्र आता है। अरूण समुद्र में दक्षिण दिशा की ओर ४२००० योजन जाने पर १७२१ योजन ऊँचा तिगिञ्छि पर्वत आता है। दोनों ही ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि इस पर्वत का अधोभाग तथा शिखर-तल विस्तीर्ण है और मध्य भाग में यह पर्वत संकीर्ण है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में इस पर्वत का विस्तार अधोभाग में १०२२ योजन, मध्यभाग में ४२४ योजन तथा शिखर-तल पर ७२३ योजन बतलाया गया है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति प्रकीर्णक में अंजन पर्वत, दधिमुख पर्वत, रतिकर पर्वत, कुण्डल पर्वत तथा रुचक पर्वत आदि अनेक पर्वतों का विस्तार अधोभाग में अधिक, उससे कम मध्य भाग में और सबसे कम शिखर-तल का बतलाया गया है। किन्तु तिगिञ्छि पर्वत का मध्यवर्ती विस्तार कम बतलाया गया है। यद्यपि पर्वत के सन्दर्भ में ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती कि उसका मध्यवर्ती भाग संकीर्ण हो तथापि दोनों ग्रन्थों में यह उल्लेख है कि इस पर्वत का मध्यवर्ती भाग वज्रमय है, इस आधार पर इस पर्वत का यही आकार निर्मित होता है।

द्वीपसागर प्रज्ञप्ति के अनुसार तिगिञ्छि पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर ६५५३५५०००० योजन चलने पर तथा वहाँ से नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी की ओर ४०००० योजन चलने पर १००००० योजन विस्तार वाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चमरचंचा राजधानी आती है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति तथा राजप्रश्नीयसूत्र में चमरचंचा राजधानी के प्रासादों की लम्बाई १२५ योजन, चौड़ाई ६२½ योजन तथा ऊँचाई ३१¼ योजन मानी गई है।

सुधर्मा सभा की तीन दिशाओं में आठ द्वार द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, राजप्रश्नीयसूत्र तथा जीवाजीवाभिगम में समान रूप से माने गये हैं, अन्तर मात्र यह है कि द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में उन द्वारों का प्रवेशमार्ग और विस्तार चार योजन माना गया है। राजप्रश्नीयसूत्र में उन द्वारों की ऊँचाई सोलह योजन तथा प्रवेशमार्ग और चौड़ाई आठ योजन कही गई है जबकि जीवाजीवाभिगम में उन द्वारों की ऊँचाई दो योजन तथा चौड़ाई और प्रवेश मार्ग एक योजन का कहा गया है। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में जिन-अस्थियों, जिनप्रतिमाओं तथा जिनमन्दिरों का जो विवरण उल्लिखित है वह राजप्रश्नीयसूत्र तथा जीवाजीवाभिगम में अधिक विस्तारपूर्वक निरूपित है।

प्रस्तुत तुलनात्मक विवरण से स्पष्ट होता है कि पर्वत, शिखर के नामों एवं विस्तार परिमाण आदि में कहीं किंचित मतभेद को छोड़कर सामान्यतया जैनधर्म की सभी परम्पराओं में मध्यलोक और विशेषरूप से मनुष्य क्षेत्र के आगे के द्वीप समुद्रों के विवरण में समानता परिलक्षित होती है। विवरणगत समानता होते हुए भी इन ग्रन्थों में भाषागत और शैलीगत भिन्नता हैं। इस आधार पर मात्र यही कहा जा सकता है कि इन सभी ग्रन्थों का आधार मूल में एक ही रहा होगा। यद्यपि इन ग्रन्थों की विषयवस्तु एवं रचनाकाल से एक क्रम स्थापित किया जा सकता है तथापि यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किस ग्रन्थ की कितनी विषयवस्तु दूसरे अन्य ग्रन्थों में गई है।

श्वेताम्बर परम्परा में मध्यलोक सम्बन्धी विवरण सर्वप्रथम अंग आगमों में स्थानांगसूत्र और भगवतीसूत्र में, उपांग साहित्य में--राजप्रश्नीयसूत्र, जीवाजीवाभिगमसूत्र, सूर्यप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि में मिलते हैं। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति जम्बूद्वीप एवं लवण समुद्र का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है। धातकीखण्ड आदि का विवरण स्थानांग और सूर्यप्रज्ञप्ति में मिलता है, किन्तु उनकी अपेक्षा जोवाजीवाभिगम में यह विवरण अधिक व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप से निरुपित है। मनुष्य क्षेत्र के बाहर का विवरण मुख्य रूप से स्थानांगसूत्र और जीवाजीवाभिगम में पाया जाता है। जीवाजीवाभिगम की अपेक्षा भी द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयवस्तु अधिक विस्तारपूर्वक उल्लिखित है। विषयवस्तु के विकासक्रम के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति की रचना अंग और उपांग साहित्य के इन विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थों के बाद ही हुई है। फिर भी जैसा कि हम पूर्व में भी सूचित कर चुके हैं; यह ग्रन्थ आगमों की अन्तिम वाचना (वि० नि० सं० ९८०) के पूर्व अस्तित्व में आ चुका था।

प्राकृत भाषा में पद्यरूप में निर्मित लोकविवेचन से सम्बन्धित ग्रन्थों में आज हमारे सामने द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और त्रिलोकप्रज्ञप्ति दोनों ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं, प्राकृत लोकविभाग आज अनुपलब्ध है। वर्तमान में जहाँ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति श्वेताम्बर परम्परा में मान्य है वहीं त्रिलोकप्रज्ञप्ति दिगम्बर परम्परा में मान्य है। त्रिलोकप्रज्ञप्ति में प्रक्षिप्तों की अधिकता के कारण उसके रचनाकाल का पूर्ण निश्चय एक विवादास्पद प्रश्न है, किन्तु विषयसामग्री की व्यापकता आदि को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि यह ग्रन्थ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति के बाद कभी रचा गया है। वैसे भी यदि हम देखें तो त्रिलोकप्रज्ञप्ति का चतुर्थ अधिकार (अध्याय) द्वीप-सागरप्रज्ञप्ति नाम से ही है। इस आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति के रचनाकार के समक्ष यह ग्रन्थ अवश्य उपस्थित रहा है। त्रिलोकप्रज्ञप्ति के प्रक्षिप्त अंशों को अलग करने के पश्चात् उसका जो स्वरूप निर्धारित होता है, वह मूलतः यापनीयों का रहा है। क्योंकि यापनीय ग्रन्थों की यह विशेषता रही है कि वे अपने समय में उपस्थित आचार्यों की विभिन्न मान्यताओं का निर्देश करते हैं और ऐसा निर्देश त्रिलोकप्रज्ञप्ति में पाया जाता है। यद्यपि यह सब कहना एक स्वतन्त्र निबन्ध का विषय है और यह चर्चा यहाँ अधिक प्रासंगिक भी नहीं है। यहाँ तो हम इतना ही बताना चाहते हैं कि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति अपेक्षाकृत संक्षिप्त और उस काल की रचना है जब आगम साहित्य को मुखाग्रही रखा जाता था जबकि त्रिलोकप्रज्ञप्ति एक विकसित और परवर्ती रचना है।

प्रस्तुत कृति में जिनअस्थियों, जिनप्रतिमाओं, जिनमंदिरों और चैत्यों आदि के स्पष्ट उल्लेख देखे जाते हैं इससे यह फलित होता है कि यह ग्रन्थ जैन परम्परा में तभी निर्मित हुआ जब उसमें जिनप्रतिमाओं और जिनमंदिरों का निर्माण होना प्रारम्भ हो चुका होगा। राजप्रश्नीयसूत्र और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति के तुलनात्मक विवेचन में हम देखते हैं कि जहाँ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में जिनअस्थियों, जिनप्रतिमाओं और जिनमंदिरों का विवरण मात्र दिया गया है, वहीं राजप्रश्नीयसूत्र में सूर्याभदेव के द्वारा उनके वन्दन-पूजन आदि करने का भी उल्लेख हुआ है। इससे ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगता है कि राजप्रश्नीयसूत्र का वह अंश जिसमें जिनप्रतिमाओं के वन्दन-पूजन आदि का विवरण है, वह द्वीपसागरप्रज्ञप्ति से किंचित परवर्ती रहा होगा।

सामान्यतया हिन्दू परम्परा में मध्यलोक के सन्दर्भ में सप्त द्वीप और सप्त सागरों का विवरण उपलब्ध होता है किन्तु जैन परम्परा में मध्य-लोक की इस सीमितता की आलोचना की गई है और यह कहा गया है कि जो लोग मध्यलोक को सप्त द्वीप और सप्त सागरों तक सीमित करते हैं, वे भ्रान्त हैं। जैन परम्परा को मान्यता तो यह है कि मेरूपर्वत और जम्बूद्वीप को लेकर वलयाकार में एक-दूसरे को घेरते हुए असंख्यात द्वीप-सागर हैं। जैन परम्परा में जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र के विवरण के पश्चात् धातकीखण्ड, कालोदधिसमुद्र, पुष्करवरद्वीप, पुष्करवरसमुद्र उसके पश्चात् नलिनोदक सागर, सुरारस सागर, क्षीरजल सागर, घृतसागर तथा क्षोदरस सागर आदि को घेरे हुए नन्दीश्वर द्वीप बताया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि जैनों ने मध्यलोक के द्वीप-समुद्रों के विवरण में यद्यपि हिन्दू परम्परा की मान्यता से कुछ आगे बढ़ने का प्रयत्न किया है तथापि दो-चार द्वीप-सागरों का विवरण देने के पश्चात् उन्हें भी विराम ही धारण करना पड़ा।

प्रस्तुत प्रकीर्णक में मध्यलोक के द्वीप-सागरों का जो विवरण उल्लिखित है, वह आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से कितना संगत है और कितना परम्परागत मान्यताओं पर आधारित है, इसकी चर्चा हमने अपने स्वतन्त्र लेख 'जैन सृष्टि शास्त्र और आधुनिक विज्ञान' में की है। यह लेख सुरेन्द्रमुनि अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित हो रहा है। इस दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करने की रूचि रखने वाले पाठक उसे वहाँ देख सकते हैं।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति प्रकीर्णक का प्रारम्भ मानुषोत्तर पर्वत से ही होता है। इसके प्रारम्भ में ग्रन्थ निर्माण की प्रतिज्ञा अथवा मंगल स्वरूप कुछ भी नहीं कहा गया हैं इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ किसी विस्तृत ग्रन्थ का एक अंश मात्र है तथा इसका पूर्व भाग संभवतः विलुप्त हो गया है। प्रस्तुत भूमिका में चर्चित ये सभी विषय ऐसे हैं जिन पर अन्तिम रूप से कुछ कहने का दावा करना आग्रहपूर्ण और मिथ्या होगा। विद्वानों से अपेक्षा है कि इस दिशा में अपने चिन्तन से हमें लाभान्ति करें।

वाराणसी — **सागरमल जैन**

२ अगस्त, १९९३ — **सुरेश सिसोदिया**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीवसागरपण्णत्तिपइण्णयं

(द्वीपसागरप्रज्ञप्ति-प्रकीर्णक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीवसागरपण्णत्तिपइण्णयं

[गा. १–१८. माणुसोत्तरपव्वओ]

पुक्खरवरदीवड्ढं परिक्खिवइ माणुसोत्तरो सेलो ।
पायारसरिसरूवो विभयंतो माणुसं लोयं ॥१॥

सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं १७२१ सो समुव्विद्धो ।
चत्तारि य तीसाइं मूले कोसं ४३०$\frac{1}{4}$ च ओगाढो ॥२॥

दस बावीसाइं अहे वित्थिण्णो होइ जोयणसयाइं १०२२ ।
सत्त य तेवीसाइं ७२३ वित्थिण्णो होइ मज्झम्मि ॥३॥

चत्तारि य चउवीसे ४२४ वित्थारो होइ उवरि सेलस्स ।
अड्ढाइज्जे दीवे दो वि समुद्दे अणुपरीइ ॥ ४ ॥

तस्सुवरि माणुसनगस्स कूडा दिसि विदिसि होंति सोलस उ ।
तेसिं नामावलियं अहक्कम्मं कित्तइस्सामि ॥ ५ ॥

पुव्वेण तिण्णि कूडा, दक्खिणओ तिण्णि, तिण्णि अवरेणं ।
उत्तरओ तिण्णि भवे चउद्दिसिं माणुसनगस्स ॥ ६ ॥

वेरुलिय १ मसारे २ खलु तहऽस्सगब्भे ३ य होंति अंजणगे ४ ।
अंकामए ५ अरिट्ठे ६ रयए ७ तह जायरूवे ८ य ॥ ७ ॥

नवमे य सिलप्पवहे ९ तत्तो फलिहे १० य लोहियक्खे ११ य ।
वइरामए य कूडे १२, परिमाणं तेसि वुच्छामि ॥ ८ ॥

एएसिं कूडाणं उस्सेहो पंच जोयणसयाइं ५०० ।
पंचेव जोयणसए ५०० मूलम्मि उ होंति वित्थिन्ना ॥ ९ ॥

[1]तिन्नेव जोयणसए पन्नत्तरि ३७५ [2]जोयणाइं मज्झम्मि ।
अड्ढाइज्जे य सए २५० सिहरतले वित्थडा कूडा ॥ १० ॥

---

१. वेरुलिय मसारे तिन्नि पन्नत्तरि प्र० मु० । लेखकप्रमादजोऽयमशुद्धोऽसङ्गतश्च पाठः ॥ २, जोयणसयाइं प्र० ह० मु० । अशुद्धोऽसङ्गतश्चायं पाठः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति प्रकीर्णक

(१-१८ मानुषोत्तर पर्वत)

(१) दुर्ग के सदृश आकृति वाला मानुषोत्तर पर्वत पुष्करवरद्वीप के अर्द्ध भाग को वेष्टित करता हुआ मनुष्य लोक को (तिर्यक् लोक के अन्य क्षेत्रों से) विभाजित करता है।

(२) वह मानुषोत्तर पर्वत (पृथ्वीतल से) एक हजार सात सौ इक्कीस योजन समान रूप से ऊँचा है और मूल में अर्थात् पृथ्वीतल से नीचे उसकी गहराई चार सौ तीस योजन और एक कोस[1] है।

(३) अधोभाग में (उस पर्वत का) विस्तार एक हजार बाईस योजन है तथा मध्य में (उसका) विस्तार सात सौ तेईस (योजन) है।

(४) (उस) पर्वत का उपरी विस्तार चार (सौ) चौबीस (योजन) है। अढाई द्वीप में दो समुद्र (लवण समुद्र और कालोदधि) रहे हुए हैं।

(५) उस मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर (विभिन्न) दिशा-विदिशाओं में सोलह शिखर हैं, उनके नामों की सूची मैं अनुक्रम से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

(६-८) मानुषोत्तर पर्वत की पूर्व दिशा में तीन, दक्षिण दिशा में तीन, पश्चिम दिशा में तीन तथा उत्तर दिशा में तीन—चारों दिशाओं में (कुल बारह) शिखर इस प्रकार हैं[2]—१. वैडूर्य, २. मसार, ३. हंसगर्भ, ४. अंजनक, ५. अङ्कमय, ६. अरिष्ट, ७. रजत, ८. जातरूप, ९. शिलप्रभ, १०. स्फटिक, ११. लोहिताक्ष और १२. वज्रमय शिखर। (अब) मैं उनका परिमाण कहता हूँ।

(९) इन शिखरों की ऊँचाई पाँच सौ योजन है और मूल में (इनका) विस्तार भी पाँच सौ योजन ही है।

(१०) ये शिखर मध्य में तीन सौ पचहत्तर योजन (विस्तार) वाले हैं तथा उपरी तलपर (इनका) विस्तार ढाई सौ योजन है।

---

१. एक कोस लगभग ३ किलोमीटर के बराबर होता है।

२. यद्यपि पूर्व गाथा में १६ शिखरों का उल्लेख हुआ है किन्तु इस गाथात्रिक में मानुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित १२ शिखरों के ही नाम बतलाए गए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगं चेव सहस्सं पंचेव सयाइं एगसीयाइं १५८१ ।
मूलम्मि उ कूडाणं सविसेसो परिरओ होइ ॥ ११ ॥

एगं चेव सहस्सं [1]छलसीयं तह य होइ सयमेगं ११८६ ।
मज्झम्मि उ कूडाणं विसेसहीणो परिक्खेवो ॥ १२ ॥

सत्तेव जोयणसया एक्काणउयं ७९१ च जोयणा होंति ।
सिहरतले कूडाणं विसेसहीणो परिक्खेवो ॥ १३ ॥

[2]ऊसे य संसिया भद्दे तत्तो भवे सुभद्दे य ।
अट्ठे य सव्वओ रुंदे आणंदे चेव नंदे य ॥ १४ ॥

नंदिसेणे अमोहे य गोथूभे य सुदंसणे ।
पलिओवमट्ठिईया नाग-सुवन्ना परिवसंति ॥ १५ ॥

दक्खिणपुव्वेण रयणकूडा(? डं) गरुलस्स वेणुदेवस्स ।
सव्वरयणं तु पुव्वुत्तरेण तं वेणुदालिस्स ॥ १६ ॥

रयणस्स अवरपासे तिण्णि वि समइच्छिऊण कूडाइं ।
कूडं वेलंबस्स [3]उ विलंबसुहियं सया होइ ॥ १७ ॥

सव्वरयणस्स अवरेण तिण्णि समइच्छिऊण कूडाइं ।
कूडं पभंजणस्सा पभंजणं आढियं होइ ॥ १८ ॥

[गा० १९-२४. नलिणोदगाइया सागरा]

तीसं च सयसहस्सा दस य सहस्सा ३०१०००० हवंति बोद्धव्वा ।
गोतित्थेहिं विरहियं खेत्तं "[4]नलिणोदगसमुद्दे" ॥ १९ ॥

विक्खंभ परिक्खेवो सो चेव कमाउ होइ नलिणोदे ।
दस चेव जोयणसए १००० उव्विद्धो, न वि य सो उच्चो ॥ २० ॥

---

१. चुलसीयं हं० । गणितक्रियाविसंवादी अशुद्धोऽयं पाठभेदः ।
२. अस्या गाथाया अर्थो न सम्यगवबुध्यते ।
३. उ वेलंबस्स सुहियं प्र० हं० । अशुद्धोऽयं पाठः ।
४. नलिनोदकसमुद्रः पुष्करोदसमुद्र इत्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) इन शिखरों की परिधि मूल में एक हजार पाँच सौ इक्यासी (योजन) से कुछ अधिक है।

(१२) इन शिखरों की परिधि मध्य में एक हजार एक सौ छियासी (योजन) से कुछ कम है।

(१३) इन शिखरों की परिधि शिखरतल पर सात सौ इक्कानवें योजन से कुछ कम है।

(१४) किरणों से संसिक्त ये भद्र शिखर संसार में कल्याणकारी है तथा सर्व प्रयोजनों में विशाल, आनन्दकर एवं मंगलकारी हैं।

(१५) (इन शिखरों पर) नन्दिषेण, अमोघ, गोस्तूप, सुदर्शन तथा पल्योपम स्थिति वाले नागकुमारदेव और सुपर्णदेव निवास करते हैं।

(१६) गरूड जातीय वेणुदेव का रत्नकूट दक्षिण-पूर्व दिशा के कोण में तथा वेणुदालिदेव का सर्वरत्नकूट पूर्व-उत्तर दिशा के कोण में स्थित है।

(१७) रत्नकूट की पश्चिम दिशा के समीप स्थित तीनों कूटों (शिखरों) को लाँघकर वेलम्बदेव का सदा सुख-युक्त वेलम्बकूट है।

(१८) सर्वरत्नकूट की पश्चिम दिशा में (स्थित) तीनों कूटों (शिखरों) को लाँघकर प्रभञ्जनदेव का प्रतिष्ठित प्रभंजनकूट है।

(१९-२४ नलिनोदक आदि सागर)

(१९) नलिनोदक समुद्र में तीस लाख दस हजार (योजन) गोतीर्थ से रहित विशेष क्षेत्र है (उसके विषय में) जानना चाहिए।

(२०) नलिनोदक समुद्र में (जो) विस्तार और परिधि है वह भी क्रम से है। (वह समुद्र) दस सौ योजन गहरा है तथा उसकी ऊँचाई नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगा जोयणकोडी छव्वीसा दस य जोयणसहस्सा १२६१०००० ।
गोतित्थेण विरहियं "सुरारसे सागरे" खेत्तं ॥ २१ ॥

पंचेव य कोडीओ दसुत्तरा दस य जोयणसहस्सा ५१०१०००० ।
गोतित्थेण विरहियं "खीरजले सागरे" खेत्तं ॥ २२ ॥

वीसं जोयणकोडी छायाला दस य जोयणसहस्सा २०४६१०००० ।
गोतित्थेण विरहियं खेत्तं "घयसागरे" होइ ॥ २३ ॥

एगासिइ कोडीणं नउया दस चेव जोयणसहस्सा ८१९०१०००० ।
गोतित्थेण विरहियं "खोयरसे सागरे" खेत्तं ॥ २४ ॥

[गा० २५ नंदीसरदीवो]

तेवट्ठं कोडिसयं चउरासीइं च सयसहस्साइं १६३८४००००० ।
नंदीसरवरदीवे विक्खंभो चक्कवालेणं ॥ २५ ॥

[गा० २६–४७ अंजणगपव्वया तदुवरि जिणाययणाइं च]

एगासि एगनउया पंचाणउइं भवे सहस्साइं ।
तिण्णेव जोयणसए ८१९१९५३०० ओगाहित्ताण अंजणगा ॥ २६ ॥

चुलसीइ सहस्साइं ८४००० उव्विद्धा, ते गया सहस्समहे १००० ।
धरणियले वित्थिण्णा अणूणगे ते दस सहस्से १०००० ॥ २७ ॥

जत्थिच्छसि विक्खंभं अंजणगणगाओ [1]ओयरित्ताणं ।
तं तिगुणियं तु काउं अट्ठावीसाए विभयाहि ॥ २८ ॥

नव चेव सहस्साइं पंचेव य होंति जोयणसयाइं ९५०० ।
अंजणगपव्वयाणं मूलम्मि उ होइ विक्खंभो ॥ २९ ॥

तीसं चेव सहस्सा बायालीसं ३००४२ च जोयणा ऊणा ।
अंजणगपव्वयाणं मूलम्मि उ परिरओ होइ ॥ ३० ॥

---

१. ओवरित्ताणं प्र० । उवविरित्ताणं हं० । उवरिवत्ताणं मु० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२१) सुरारस सागर में एक करोड़ छब्बीस (लाख) दस हजार योजन गोतीर्थ से रहित विशेष क्षेत्र हैं।

(२२) क्षीर-जल-सागर (क्षीर सागर) में पाँच करोड़ दस (लाख) दस हजार योजन गोतीर्थ से रहित विशेष क्षेत्र हैं।

(२३) घृतसागर में बीस करोड़ छियालीस (लाख) दस हजार योजन गोतीर्थ से रहित विशेष क्षेत्र हैं।

(२४) क्षोदरस सागर में इक्यासी करोड़ नब्बे (लाख) दस हजार योजन गोतीर्थ से रहित विशेष क्षेत्र हैं।

(२५ नन्दीश्वर द्वीप)

(२५) चक्राकार रूप से नन्दीश्वर द्वीप का विस्तार एक सौ तिरसठ करोड़ चौरासी लाख (योजन) है।

(२६–४७ अंजन पर्वत और उनके ऊपर जिनदेव के मंदिर)

(२६) (नन्दीश्वर द्वीप में) इक्यासी (करोड़) इक्कानवें (लाख) पिच्चानवें हजार तीन सौ योजन चलने पर अञ्जन पर्वत आते हैं।

(२७) वे अंजन पर्वत चौरासी हजार (योजन) ऊँचे तथा एक हजार (योजन) नीचे (भूमितल में) गये हुए हैं। पृथ्वीतल पर वे (पर्वत) दस हजार (योजन) से अधिक विस्तार वाले हैं।

(२८) जिसे (अंजन पर्वतों की) चौड़ाई जानने की इच्छा हो, (वह) अंजन पर्वत की ऊँचाई (८४,००० योजन) को तिगुणा करके (८४,००० × ३ = २,५२००० योजन) (उसमें) अट्ठाईस का भाग देकर ($\frac{२,५२०००}{२८}$ = ९००० योजन), उसे जान सकता है।

(२९) अंजन पर्वतों का विस्तार मूल में नौ हजार पाँच सौ योजन ही है।

(३०) अंजन पर्वतों की परिधि मूल में तीस हजार बयालीस योजन से कुछ कम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नव चेव सहस्साइं[1] चत्तारि सया ९४०० हवंति उ अणूणा ।
अंजणगपव्वयाणं धरणियले होइ विक्खंभो ॥ ३१ ॥

अगुणत्तीस सहस्सा सत्तेव सया हवंति छव्वीसा २९७२६ ।
अंजणगपव्वयाणं धरणियले परिरओ होइ ॥ ३२ ॥

पंचेव सहस्साइं दो चेव सया ५२०० हवंति उ अणूणा ।
अंजणगपव्वयाणं बहुमज्झे होइ विक्खंभो ॥ ३३ ॥

सोलस चेव सहस्सा सत्तेव सया बिउत्तरा होंति १६७०२ ।
अंजणगपव्वयाणं बहुमज्झे परिरओ होइ ॥ ३४ ॥

विक्खंभेणंजणगा सिहरतले होंति जोयणसहस्सं १००० ।
तिन्नेव सहस्साइं बावट्ठसयं ३१६२ परिरएणं ॥ ३५ ॥

वड्ढंति एगपासे दस गंतूणं पएसमेगं तु ।
वीसं गंतूण दुवे वड्ढंति य दोसु पासेसु ॥ ३६ ॥

भिंगंग-रुइल-कज्जल-अंजणधाउसरिसा विरायंति ।
गगणतलमणुलिहंता अंजणगा पव्वया रम्मा ॥ ३७ ॥

अंजणगपव्वयाणं सिहरतलेसुं[2] हवंति पत्तेयं ।
अरहंतायययणाइं सीहनिसाईणि तुंगाइं ॥ ३८ ॥

नर-मगर-विहग-वालगनाणामणिरूवरइयसोहाइं ।
सव्वरयणामयाइं अव्व(? त्त)पडिक्खोमभूयाइं ॥ ३९ ॥

जोयणसयमायामा १००, पन्नासं ५० जोयणाइं वित्थिन्ना ।
पन्नत्तरि ७५ मुव्विद्धा अंजणगतले जिणाययणा ॥ ४० ॥

---

१. °स्साइं दो चेव सया हवंति प्र० हं० मु० । सर्वासु प्रतिषु विद्यमानोऽपि गणितक्रियाविसंवादीति असाधुरेवायं पाठः । चत्तारि य होंति जोयणसयाइं । अंजणग° इति लोकप्रकाशे सर्गं २४ मध्ये पाठः पत्र २९२ पृ० २ ॥

२. °तलेसू हं० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३१) अंजन पर्वतों का विस्तार पृथ्वीतल पर नौ हजार चार सौ (योजन) (से भी) अधिक है।

(३२) अंजन पर्वतों की परिधि पृथ्वीतल पर उनतीस हजार सात सौ छब्बीस (योजन) ही है।

(३३) अंजन पर्वतों का विस्तार बिल्कुल मध्य में पाँच हजार दो सौ (योजन) (से भी) अधिक है।

(३४) अंजन पर्वतों की परिधि बिल्कुल मध्य में सोलह हजार सात सौ दो (योजन) है।

(३५) अंजन पर्वतों के शिखर-तल का विस्तार एक हजार योजन तथा परिधि तीन हजार एक सौ बासठ (योजन) है।

(३६) (अंजन पर्वत पर) एक दिशा में दस योजन जाने पर एक प्रदेश बढ़ता है तथा दो दिशाओं में बीस योजन जाने पर दो प्रदेश बढ़ते हैं।

(३७) सुन्दर भौरों, काजल और अंजन धातु के समान कृष्ण वर्ण वाले रमणीय अंजन पर्वत गगन-तल को छुते हुए शोभायमान हैं।

(३८) प्रत्येक अंजन पर्वत के शिखर-तल पर बैठे हुए सिंह के आकार वाले गगनचुम्बी जिनमंदिर हैं।

(३९) (वहाँ) नानामणियों से रचित मनुष्यों, मगरों, विहगों तथा व्यालों की आकृतियाँ शोभायमान हैं। (वे आकृतियाँ) सर्व रत्नमय, आश्चर्य उत्पन्न करने वाली तथा अवर्णनीय हैं।

(४०) अंजन पर्वत के शिखर-तल पर स्थित वे जिनमंदिर सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े तथा पचहत्तर योजन ऊँचे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंजणगपव्वयाण उ सयस्सहस्सं १००००० भवे अबाहाए ।
पुव्वाइआणुपुव्वी पोक्खरणीओ उ चत्तारि ॥ ४१ ॥

पुव्वेण होइ नंदा[1] १ नंदवई दक्खिणे दिसाभाए २ ।
अवरेण य णंदुत्तर ३ [2]नंदिसेणा उ उत्तरओ ४ ॥ ४२ ॥

एगं च सयसहस्सं १००००० वित्थिण्णाओ सहस्समोविद्धा १००० ।
निम्मच्छ-कच्छभाओ जलभरियाओ अ सव्वाओ ॥ ४३ ॥

पुक्खरणीण चउदिसिं पंचसए ५०० जोयणाणऽबाहाए ।
पुव्वाइआणुपुव्वी चउद्दिसिं होंति वणसंडा ॥ ४४ ॥

पागारपरिक्खित्ता सोहंते ते वणा अहियरम्मा ।
पंचसए ५०० वित्थिन्ना, सयस्सहस्सं १००००० च आयामा ॥ ४५ ॥

पुव्वेण असोगवणं, दक्खिणओ होइ सत्तिवन्नवणं ।
अवरेण चंपयवणं, चूयवणं उत्तरे पासे ॥ ४६ ॥

सव्वेसिं तु वणाणं चेइयरुक्खा हवंति मज्झम्मि ।
नाणारयणविचित्ताहिं परिगया ते वि दित्तीहिं ॥ ४७ ॥

[गा. ४८–५१. दहिमुहपव्वया तदुवरि जिणाययणाणि य]

रयणमुहा उ दहिमुहा पुक्खरणीणं हवंति मज्झम्मि ।
दस चेव सहस्सा १०००० वित्थरेण, चउसट्ठि ६४ मुव्विद्धा ॥ ४८ ॥

एकत्तीस सहस्सा छच्चेव सया हवंति तेवीसा ३१६२३ ।
[3]दहिमुहनगपरिखेवो किंचिविसेसेण परिहीणो ॥ ४९ ॥

संखदल-विमलनिम्मलदहिघण-गोखीर-हारसंकासा ।
गगणतलमणुलिहिता सोहंते दहिमुहा रम्मा ॥ ५० ॥

पत्तेयं पत्तेयं सिहरतले होंति दहिमुहनगाणं ।
अरहंतायययणाइं सीहनिसाईणि तुंगाणि ॥ ५१ ॥

---

१. "नंदुत्तरा य नंदा आणंदा णंदिवद्धणा ।" इति चत्वारि नामानि जीवाजीवाभिगमे दृश्यन्ते पत्र ३५७ । लोकप्रकाशेऽप्येतान्येव नामानि वर्त्तन्ते, किञ्च तत्र 'आणंदा' स्थाने 'सुनन्दा' नामोल्लेखो वर्त्तते । २. नंदिरसणा उ हं० ।
३. नगदहिमुपरिक्खेवो प्र० हं० मु० । लेखकप्रमादजोऽयं विकृतः पाठः ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

(४१-४२) अंजन पर्वतों के एक लाख योजन अपान्तराल को छोड़ने के बाद अनुक्रम से पूर्व आदि चारों दिशाओं में (ये) चार पुष्करिणियाँ हैं—(१) पूर्व दिशा में नन्दा, (२) दक्षिण दिशा में नन्दवती, (३) पश्चिम दिशा में नन्दोत्तरा तथा (४) उत्तर दिशा में नंदिषेणा।

(४३) (इन पुष्करिणियों का) विस्तार एक लाख (योजन) है तथा ये एक हजार (योजन) गहरी हैं और सब ओर से कछुओं द्वारा विलेपित (अर्थात् स्वच्छ) जल से भरी हुई हैं।

(४४) (इन) पुष्करिणियों की चारों दिशाओं में पाँच सौ योजन के अपान्तराल को छोड़ने के बाद अनुक्रम से पूर्व आदि चारों दिशाओं में (चार) वनखण्ड हैं।

(४५) अत्यधिक रमणीय वे वन चारों ओर से प्राकार से घिरे होने से शोभायुक्त हैं। (वे वन) पाँच सौ (योजन) चौड़े तथा एक लाख (योजन) लम्बे हैं।

(४६) पूर्व दिशा में अशोकवन, दक्षिण दिशा में सप्तपर्णवन, पश्चिम दिशा में चंपकवन और उत्तर दिशा में आम्रवन है।

(४७) सभी वनों के मध्य में चैत्यवृक्ष हैं, वे वृक्ष नानाप्रकार के विचित्र रत्नों के प्रकाश से प्रकाशित हैं।

(४८-५१ दधिमुख पर्वत और उनके ऊपर जिनदेव के मंदिर)

(४८) (उन) पुष्करिणियों के मध्य में रत्नमय दधिमुख पर्वत हैं (जिनका) विस्तार दस हजार योजन और ऊँचाई चौसठ (योजन) है।

(४९) दधिमुख पर्वतों की परिधि इकतीस हजार छः सौ तेईस (योजन) है, उससे कम या अधिक नहीं है।

(५०) शंख समूह की तरह विशुद्ध, अच्छे जमे हुए दही के समान निर्मल, गाय के दुध की तरह (.उज्जवल) और माला के समान (क्रमबद्ध) (ये) मनोरम दधिमुख पर्वत गगनतल को छुते हुए शोभायमान हैं।

(५१) प्रत्येक दधिमुख पर्वत के शिखरतल पर बैठे हुए सिंह के आकार वाले गगनचुम्बी जिनमंदिर हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[गा० ५२-५७. अंजणगपव्वयाणं पोक्खरिणीओ]

जो दक्खिणअंजणगो तस्सेव चउद्दिसिं च बोद्धव्वा ।
पुक्खरिणी चत्तारि वि इमेहिं नामेहि विन्नेया ॥ ५२ ॥
पुव्वेण होइ भद्दा १, होइ [1]सुभद्दा उ दक्खिणे पासे २ ।
अवरेण होइ कुमुया ३, उत्तरओ पुंडरिगिणी उ ४ ॥ ५३ ॥

अवरेण अंजणो जो उ होइ तस्सेव चउदिसिं होंति ।
पुक्खरिणीओ, नामेहिं इमेहिं चत्तारि विन्नेया ॥ ५४ ॥
पुव्वेण होइ विजया १, दक्खिणओ होइ वेजयंती उ २ ।
अवरेणं तु जयंती ३, अवराइय उत्तरे पासे ४ ॥ ५५ ॥

जो उत्तरअंजणगो तस्सेव चउद्दिसिं च बोद्धव्वा ।
पुक्खरिणीओ चत्तारि, इमेहिं नामेहिं विन्नेया ॥ ५६ ॥
पुव्वेण नंदिसेणा १, आमोहा पुण दक्खिणे दिसाभाए २ ।
अवरेणं गोत्थूभा ३ सुदंसणा होइ उत्तरओ ४ ॥ ५७ ॥

[गा० ५८-७०. रइकरपव्वया सक्कोसाणदेव-देवीणं रायहाणीओ य]

एक्कासि एगनउया पंचाणउइं भवे सहस्साइं ८१९१९५००० ।
नंदीसरवरदीवे ओगाहित्ताण रइकरगा ॥ ५८ ॥

उच्चत्तेण सहस्सं १०००, अड्ढाइज्जे सए य उव्विद्धा २५० ।
दस चेव सहस्साइं १०००० वित्थिण्णा होंति रइकरगा ॥ ५९ ॥

एक्कत्तीस सहस्सा छ च्चेव सए हवंति तेवीसे ३१६२३ ।
रइकरगपरिक्खेवो किंचिविसेसेण परिहीणो ॥ ६० ॥

एत्तो एक्केक्कस्स उ सयसहस्सं १००००० भवे अबाहाए ।
पुव्वाइआणुपुव्वी चउद्दिसिं रायहाणीओ ॥ ६१ ॥

जो पुव्वदक्खिणे रइकरगो तस्स उ चउद्दिसिं होंति ।
सक्कऽग्गमहिस्सीणं एया खलु रायहाणीओ ॥ ६२ ॥
देवकुरु १, उत्तरकुरा २, एया पुव्वेण दक्खिणेणं च ।
अवरेण उत्तरेण य नंदुत्तर ३ नंदिसेणा ४ य ॥ ६३ ॥

---

१. जीवाजीवाभिगमोपाङ्गसूत्रे लोकप्रकाशे च 'सुभद्दा' स्थाने 'विसाला' नाम दृश्यते ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५२-५७. अंजनपर्वतों की पुष्करिणियाँ)

(५२–५३) दक्षिण दिशा वाला जो अंजन पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार पुष्करिणियाँ हैं। इन्हें इन नामों से जानना चाहिए— (१) पूर्व दिशा में भद्रा, (२) दक्षिण दिशा में सुभद्रा, (३) पश्चिम दिशा में कुमुदा और (४) उत्तर दिशा में पुंडरीकिणी।

(५४–५५) पश्चिम दिशा वाला जो अंजन पर्वत है, उसको चारों दिशाओं में भी चार पुष्करिणियाँ हैं। इन्हें इन नामों से जानना चाहिए— (१) पूर्व दिशा में विजया, (२) दक्षिण दिशा में वैजयन्ती, (३) पश्चिम दिशा में जयन्ती और (४) उत्तर दिशा में अपराजिता।

(५६–५७) उत्तर दिशा वाला जो अंजन पर्वत है उसकी भी चारों दिशाओं में चार पुष्करिणियाँ हैं। इन्हें इन नामों से जानना चाहिए— (१) पूर्व दिशा में नन्दिषेणा, (२) दक्षिण दिशा में अमोघा, (३) पश्चिम दिशा में गोस्तूपा और (४) उत्तर दिशा में सुदर्शना।

(५८-७०. रतिकर पर्वत और शक्र ईशान देव-देवियों की राजधानियाँ)

(५८) नन्दीश्वर द्वीप में इक्यासी (करोड़) इक्कानवें (लाख) पिच्चानवें हजार (योजन) अवगाहना करने पर रतिकर पर्वत हैं।

(५९) (ये) रतिकर पर्वत एक हजार (योजन) ऊँचे, ढाई सौ (योजन) गहरे और दस हजार (योजन) विस्तार वाले हैं।

(६०) रतिकर पर्वतों की परिधि इकतीस हजार छः सौ तेईस (योजन) ही है। उससे कम या अधिक नहीं है।

(६१) प्रत्येक (रतिकर पर्वत) के एक लाख (योजन) अपान्तराल को छोड़ने के बाद अनुक्रम से पूर्वादि चारों दिशाओं में चार राजधानियाँ हैं।

(६२–६३) पूर्व-दक्षिण दिशा में जो रतिकर पर्वत है उसकी चारों दिशाओं में शक्र-अग्रमहिषियों की ये (चार) राजधानियाँ हैं—(१) पूर्व दिशा में देवकुरा, (२) दक्षिण दिशा में उत्तरकुरा, (३) पश्चिम दिशा में नन्दोत्तरा तथा (४) उत्तर दिशा में नंदिसेणा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगं च सयसहस्सं १००००० वित्थिण्णाओ उ आणुपुव्वीए ।
तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं तु सव्वाओ ॥ ६४ ॥

जो अवरदक्खिणे रइकरो उ तस्सेव चउदिसिं होंति ।
सक्कऽग्गमहिस्सीणं एया खलु रायहाणीओ ॥ ६५ ॥

भूया १ भूयवडिंसा २, एया पुव्वेण दक्खिणेण भवे ।
अवरेण उत्तरेण य मणोरमा ३ अग्गिमालीया ४ ॥ ६६ ॥

अवरुत्तररइकरगे चउद्दिसिं होंति तस्स एयाओ ।
ईसाणअग्गमहिसीण ताओ खलु रायहाणीओ ॥ ६७ ॥
सोमणसा १ य सुसीमा २, एया पुव्वेण दक्खिणेण भवे ।
अवरेण उत्तरेण य सुदंसणा ३ चेवऽमोहा ४ य ॥ ६८ ॥

पुव्वुत्तररइकरगे तस्सेव चउद्दिसिं भवे एया ।
ईसाणऽग्गमहिसीण सालपरिवेढियतणओ ॥ ६९ ॥
रयणप्पहा १ य रयणा २, [एया] पुव्वेण दक्खिणेण भवे ।
सव्वरयणा ३ रयणसंचया ४ य अवरुत्तरे पासे ॥ ७० ॥

[गा० ७१. कुंडलदीवो]

दो कोडिसहस्साइं छ च्चेव सयाइं एक्कवीसाइं ।
चोयालसयसहस्सा २६२१४४००००० [1]विक्खंभो कोंडलवरस्स ॥ ७१ ॥

[गा० ७२–७५. कुंडलपव्वओ]

कोंडलवरस्स मज्झे णगुत्तमो होइ कुंडलो सेलो ।
पागारसरिसरूवो विभयंतो कोंडलं दीवं ॥ ७२ ॥

बायालीस सहस्से ४२ ०० उव्विद्धो कुंडलो हवइ सेलो ।
एगं चेव सहस्सं १००० धरणियलमहे समोगाढो ॥ ७३ ॥

दस चेव जोयणसए बावीसं १०२२ वित्थडो य मूलम्मि ।
सत्तेव जोयणसए तेवीसे ७२३ वित्थडो मज्झे ॥ ७४ ॥

चत्तारि जोयणसए चउवीसे ४२४ वित्थडो उ सिहरतले ।
एयस्सुवरिं कूडे अहक्कमं कित्तइस्सामि ॥ ७५ ॥

१. विक्खंभो चक्कवालेण प्र० हं० मु० । लेखकभ्रान्तिजोऽयं पाठः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६४) क्रम से (ये चारों राजधानियाँ) एक लाख (योजन) विस्तार वाली हैं तथा इनकी सम्पूर्ण परिधि उससे तीन गुणा अधिक है।

(६५-६६) पश्चिम-दक्षिण दिशा में जो रतिकर पर्वत है उसकी चारों दिशाओं में शक्र-अग्रमहिषियों की ये (चार) चार राजधानियाँ हैं—(१) पूर्व दिशा में भूता, (२) दक्षिण दिशा में भूतावतंसा, (३) पश्चिम दिशा में मनोरमा तथा (४) उत्तर दिशा में अग्निमाली।

(६७-६८) पश्चिम-उत्तर दिशा में (जो) रतिकर पर्वत है उसकी चारों दिशाओं में ईशान-अग्रमहिषियों की ये (चार) राजधानियाँ हैं—(१) पूर्व दिशा में सौमनसा, (२) दक्षिण दिशा में सुसीमा, (३) पश्चिम दिशा में सुदर्शना तथा (४) उत्तर दिशा में अमोघा।

(६९-७०) पूर्व-उत्तर दिशा में (जो) रतिकर पर्वत है उसकी चारों दिशाओं में पतले शाल वृक्षों से परिवेष्टित ईशान-अग्रमहिषियों की ये (चार) राजधानियाँ हैं—(१) पूर्व दिशा में रत्नप्रभा, (२) दक्षिण दिशा में रत्ना, (३) पश्चिम दिशा में सर्वरत्ना तथा (४) उत्तर दिशा में रत्नसंचया।

(७१. कुण्डल द्वीप)

(७१) कुण्डल द्वीप का विस्तार दो हजार छः सौ इक्कीस करोड़ चवालीस लाख योजन है।

(७२-७५. कुण्डल पर्वत)

(७२) कुण्डल द्वीप के मध्य में कुण्डल पर्वत नामक उत्तम पर्वत है। प्राकार के समान आकार वाला यह पर्वत कुण्डल द्वीप को (अन्य द्वीपों से) विभाजित करता है।

(७३) कुण्डल पर्वत बयालीस हजार (योजन) ऊँचा तथा नीचे भूमि तल में समान रूप से एक हजार (योजन) गहरा है।

(७४) (कुण्डल पर्वत) अधो भाग में दस सौ बावीस योजन विस्तार वाला तथा मध्य भाग में सात सौ तेवीस योजन विस्तार वाला है।

(७५) (कुण्डल पर्वत) शिखर-तल पर चार सौ चौबीस योजन विस्तार वाला है। अब मैं इसके ऊपर (स्थित) शिखरों (के विषय) में अनुक्रम से कहता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[गा० ७६--८३. कुंडलपव्वओवरिं सोलस कूडा]

पुव्वेण होंति कूडा चत्तारि उ, दक्खिणे वि चत्तारि ।
अवरेण वि चत्तारि उ, उत्तरओ होंति चत्तारि ॥ ७६ ॥

वइरपभ १ वइरसारे २ कणगे ३ कणगुत्तमे ४ इ य ।
रत्तप्पभे ५ रत्तधाऊ ६ सुप्पभे ७ य महप्पभे ८ ॥ ७७ ॥

मणिप्पभे ९ य मणिहिये १० रुयगे ११ एगवंडिसए १२ ।
फलिहे १३ य महाफलिहे १४ हिमवं १५ मंदिरे १६ इ य ॥ ७८ ॥

एएसिं कूडाणं उस्सेहो पंच जोयणसयाइं ५०० ।
पंचेव जोयणसए ५०० मूलम्मि उ वित्थडा कूडा ॥ ७९ ॥

तिन्नेव जोयणसए पन्नत्तरि ३७५ जोयणाइं मज्झम्मि ।
अड्ढाइज्जे य सए २५० सिहरतले वित्थडा कूडा ॥ ८० ॥

एगं चेव सहस्सं पंचेव सयाइं [1]एक्कसीयाइं १५८१ ।
मूलम्मि उ कूडाणं सविसेसो परिरओ होइ ॥ ८१ ॥

एगं चेव सहस्सं छलसीयं चेव होइ सयमेगं ११८६ ।
मज्झम्मि उ कूडाणं विसेसहीणो परिक्खेवो ॥ ८२ ॥

सत्तेव जोयणसए एक्काणउयं ७९१ च जोयणा होंति ।
सिहरतले कूडाणं विसेसहीणो परिक्खेवो ॥ ८३ ॥

[गा० ८४--८६. कुंडलपव्वयकूडेसु सोलस नागकुमारा]

पलिओवमट्ठिईया नागकुमारा[2] वसंति एएसु ।
तेसिं नामावलियं अहक्कम्मं कित्तइस्सामि ॥ ८४ ॥

तिसीसे १ पंचसीसे २ य सत्तसीसे ३ महाभुजे ४ ।
पउमुत्तरे ५ पउमसेणे ६ महापउमे ७ च वासुगी ८ ॥ ८५ ॥

थिरहियय ९ मउयहियए १० सिरिवच्छे ११ सोत्थिए १२ इ य ।
सुंदरनागे १३ विसालक्खे १४ पंडुरंगे १५ पंडुकेसी १६ य ॥ ८६ ॥

---

१. एक्कवीसाइं हं० । गणितक्रियाविसंवादी लेखकप्रमादजोऽयं पाठभेदः ॥
२. °रा हवंति हं० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७६-८३. कुण्डल पर्वत के ऊपर सोलह शिखर)

(७६-७८) (कुण्डल पर्वत के ऊपर) चार शिखर पूर्व दिशा में, चार दक्षिण दिशा में, चार पश्चिम दिशा में, तथा चार ही शिखर उत्तर दिशा में हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) वज्रप्रभ, (२) वज्रसार, (३) कनक, (४) कनकोत्तम, (५) रक्तप्रभ, (६) रक्तधातु, (७) सुप्रभ, (८) महाप्रभ, (९) मणिप्रभ, (१०) मणिहित, (११) रुचक, (१२) एकवर्तसक, (१३) स्फटिक, (१४) महास्फटिक, (१५) हिमवत् और (१६) मंदिर।

(७९) इन शिखरों की ऊँचाई पाँच सौ योजन है तथा अधो भाग में पाँच सौ योजन ही इनका विस्तार है।

(८०) (ये) शिखर मध्य में तीन सौ पचहत्तर योजन तथा शिखर-तल पर ढाई सौ (योजन) विस्तार वाले हैं।

(८१) (इन) शिखरों की परिधि अधोभाग में एक हजार पाँच सौ इक्यासी (योजन) से कुछ अधिक है।

(८२) (इन) शिखरों की परिधि मध्य भाग में एक हजार एक सौ छियासी (योजन) से कुछ कम है।

(८३) (इन) शिखरों की परिधि शिखर-तल पर सात सौ इक्यानवें (योजन) से कुछ कम है।

(८४-८६. कुण्डल पर्वत के शिखरों पर सोलह नागकुमारदेव)

(८४-८६) इन शिखरों पर पल्योपम स्थिति वाले (सोलह) नागकुमार देव रहते हैं, मैं उनकी नामावली को अनुक्रम से कहता हूँ—(१) त्रिशीर्ष, (२) पंचशीर्ष, (३) सप्तशीर्ष, (४) महाभुज, (५) पद्मोत्तर, (६) पद्मसेन, (७) महापद्म, (८) वासुकि, (९) स्थिरहृदय, (१०) मृदु-हृदय, (११) श्रीवत्स, (१२) स्वस्तिक, (१३) सुन्दरनाग, (१४) विशालक्ष, (१५) पाण्डुरंग और (१६) पाण्डुकेशी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[गा० ८७-९७. कुंडलवरब्भंतरे सोहम्मीसाणलोगपालाणं रायहाणीओ]

कुंडलनगस्स (? कुंडलवरस्स) अब्भिंतरपासे होंति रायहाणीओ ।
सोलस उत्तरपासे सोलस[1] पुण दक्खिणे पासे ॥ ८७ ॥

जा उत्तरेण सोलस ताओ ईसाणलोगपालाणं ।
सक्कस्स लोगपालाण दक्खिणे सोलस हवंति ॥ ८८ ॥

मज्झे होइ चउण्हं वेसमणपभो नगुत्तमो सेलो ।
रइकरगपव्वयसमो उस्सेहुव्वेह-विक्खंभो ॥ ८९ ॥

तस्स य नगुत्तमस्स उ चउद्दिसिं होंति रायहाणीओ ।
जंबुद्दीवसमाओ विक्खंभा-ऽऽयामउत्ताओ ॥ ९० ॥
पुव्वेण [2]अयलभद्दा १ मसक्कसारा य होइ दाहिणओ २ ।
अवरेणं तु कुबेरा ३ धणप्पभा उत्तरे पासे ४ ॥ ९१ ॥

एएणेव कमेणं वरुणस्स य होंति अवरपासम्मि ।
वरुणप्पभसेलस्स वि चउद्दिसिं रायहाणीओ ॥ ९२ ॥
पुव्वेण होइ वरुणा १ वरुणपभा दक्खिणे दिसाभाए २ ।
अवरेण होइ कुमुया ३ उत्तरओ पुंडरिगिणी ४ य ॥ ९३ ॥

एएणेव कमेणं सोमस्स वि होंति अवरपासम्मि ।
सोमप्पभसेलस्स वि चउद्दिसिं रायहाणीओ ॥ ९४ ॥
पुव्वेण होइ सोमा १ सोमपभा दक्खिणे दिसाभाए २ ।
सिवपागारा अवरेण ३ होइ णलिणा य उत्तरओ ४ ॥ ९५ ॥

एणणेव कमेणं [च] अंतगस्सावि होइ अवरेणं ।
जमवत्तिप्पभसेलस्स चउद्दिसिं रायहाणीओ ॥ ९६ ॥
पुव्वेणं तु विसाला १ अईविसाला उ दाहिणे पासे २ ।
[3]सेयपभा अवरेणं ३ अमया पुण उत्तरे पासे ४ ॥ ९७ ॥

---

१. **सोलस** दक्खिणपासे, सोलस पुण उत्तरे पासे । इति लोकप्रकाशे सर्ग २४. पत्र २९९ पृ० १ ।

२. अलयभद्दा हं० । ३. सेहुपमा प्र० हं० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(८७-९७. कुण्डल पर्वत के भीतर सौधर्म ईशान लोकपालों की राजधानियाँ)

(८७) कुण्डल पर्वत की अभ्यन्तरपार्श्व में अर्थात् अन्दर की ओर सोलह राजधानियाँ उत्तर दिशा में और सोलह दक्षिण दिशा में है।

(८८) उत्तर दिशा में जो सोलह (राजधानियाँ) हैं वे ईशान लोकपालों की हैं तथा दक्षिण दिशा में जो सोलह (राजधानियाँ) हैं वे शक्र लोकपालों की हैं।

(८९) (कुण्डल पर्वत के) मध्य भाग में वैश्रमणप्रभ पर्वत नामक उत्तम पर्वत है। (यह पर्वत) रतिकर पर्वत के समान ही गहरा, ऊँचा और विस्तार वाला है।

(९०-९१) उस पर्वत की चारों दिशाओं में जम्बूद्वीप के समान कथित लम्बाई-चौड़ाई वाली (ये चार) राजधानियाँ हैं—(१) पूर्व दिशा में अचलभद्रा, (२) दक्षिण दिशा में मसक्सार, (३) पश्चिम दिशा में कुबेरा और(४) उत्तर दिशा में धनप्रभा।

(९२-९३) इसी क्रम से पश्चिम दिशा में स्थित वरुणदेव की (ये चार) राजधानियाँ हैं—(१) पूर्व दिशा में वरुणा, (२) दक्षिण दिशा में वरुणप्रभा, (३) पश्चिम दिशा में कुमुदा और (४) उत्तर दिशा में पुण्डरीकिणी।

(९४-९५) इसी क्रम से पश्चिम दिशा में स्थित सोमप्रभ पर्वत की चारों दिशाओं में सोमदेव की (ये चार) राजधानियाँ हैं—(१) पूर्व दिशा में सोमा, (२) दक्षिण दिशा में सोमप्रभा, (३) पश्चिम दिशा में शिवप्राकारा और (४) उत्तर दिशा में नलिना।

(९६-९७) इसी क्रम से पश्चिम दिशा में स्थित यमवृत्तिप्रभ पर्वत की चारों दिशाओं में अंतगदेव की (ये चार) राजधानियाँ हैं—(१) पूर्व दिशा में विशाला, (२) दक्षिण दिशा में अतिविशाला, (३) पश्चिम दिशा में श्वेतप्रभा और (४) उत्तर दिशा में अमृता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[गा० ९८-१०१. कुंडलवरब्भंतरे सक्कीसाणऽग्गमहिसीणं रायहाणीओ]

सक्कस्स देवरन्नो जाओ उ हवंति अग्गमहिसीओ ।
तासिं पि य पत्तेयं अट्ठेव य रायहाणीओ ॥ ९८ ॥

जन्नामा देवीओ तन्नामा होंति रायहाणीओ ।
सक्कस्स देवरन्नो ताओ उ हवंति दक्खिणओ ॥ ९९ ॥

ईसाणदेवरन्नो जाओ उ हवंति अग्गमहिसीओ ।
तासिं पि य पत्तेयं अट्ठेव य रायहाणीओ ॥ १०० ॥
जन्नामा देवीओ तन्नामा होंति रायहाणीओ ।
ईसाणदेवरन्नो तासिं तु हवंति उत्तरओ ॥ १०१ ॥

[गा० १०२-१०९. कुंडलवरबाहिं तायत्तीसगाणं तदग्गमहिसीणं च रायहाणीओ]

कुंडलवरस्स बाहिं छसु चेव हवंति सयसहस्सेसु ६००००० ।
तेत्तीसं ३३ रइकरगा उ पव्वया तत्थ रम्मा उ ॥ १०२ ॥

सक्कस्स देवरन्नो तायत्तीसा हवंति जे देवा ।
उप्पायपव्वया खलु पत्तेयं तेसि बोद्धव्वा ॥ १०३ ॥

एत्तो एक्केक्कस्स उ चउद्दिसिं होंति रायहाणीओ ।
जंबुद्दीवसमाओ विक्खंभाऽऽयामउत्ताओ[1] ॥ १०४ ॥

पढमा उ सयसहस्सा, बिइया तिसु चेव सयसहस्सेसु ।
पुव्वाइआणुपुव्वी तासिं नामाइं कित्ते हं ॥ १०५ ॥
विजया १ य वेजयंती २ जयंति ३ अवराइया ४ य बोद्धव्वा ।
तत्तो य नलिणनामा ५ नलिणगुम्मा ६ य पउमा ७ य ॥ १०६ ॥
तत्तो य महापउमा ८ अट्ठेव य होंति रायहाणीओ ।
चक्कज्झया १ य सच्चा २ सव्वा ३ वयरज्झया ४ चेव ॥ १०७ ॥

---

१. °यामओ ताओ प्र० मु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९८-१०१ कुण्डलवर पर्वत के भीतर शक्र ईशान अग्र-महिषियों की राजधानियाँ)

(९८) शक्र देवराज की जो अग्रमहिषियाँ हैं उनकी भी प्रत्येक की आठ-आठ राजधानियाँ हैं।

(९९) दक्षिण दिशा की ओर (जो) शक्र देवराज है उनकी जिस नाम वाली देवियाँ हैं उसी नाम वाली (उनकी) राजधानियाँ हैं।

(१००-१०१) उत्तर दिशा की ओर जो ईशान देवराज हैं उनकी आठ अग्रमहिषियाँ हैं, उनकी प्रत्येक की उसी नाम वाली आठ राजधानियाँ हैं।

(१०२-१०९ कुंडलवर पर्वत के बाहर त्रायस्त्रिंशकों और उनकी अग्रमहिषियों की राजधानियाँ)

(१०२) कुंडलवर पर्वत के बाहर छः लाख (योजन) (जाने पर) तैंतीस रमणीय रतिकर पर्वत हैं।

(१०३) इन रतिकर पर्वतों को शक्र देवराज के जो तैंतीस देव हैं, उनके प्रत्येक के उत्पाद पर्वत[1] के रूप में जानना चाहिए।

(१०४) इन उत्पाद पर्वतों की चारों दिशाओं में प्रत्येक देव की जम्बूद्वीप के समान लम्बाई-चौड़ाई वाली राजधानियाँ कही गई हैं।

(१०५-१०७) प्रथम, द्वितीय, तृतीय और अन्य राजधानियाँ भी एक-एक लाख योजन की हैं। पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से मैं उनके नाम कहता हूँ—(१) विजया, (२) वैजयन्ती, (३) जयन्ती, (४) अपराजिता, (५) नलिननामा, (६) नलिनगुल्मा, (७) पद्मा और (८) महापद्मा। चक्रध्वजा, सत्या, सर्वा और वज्रध्वजा आदि (तैंतीस अग्रमहिषियाँ देवराज शक्र की हैं)।

---

१. ऐसे पर्वत जहाँ आकर कई व्यन्तर-जातीय देव-देवियाँ क्रिड़ा के लिए विचित्र प्रकार के शरीर बनाते हैं, उत्पाद पर्वत कहलाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सक्कस्स देवरण्णो तायत्तीसाण अग्गमहिसीणं ।
तासिं खलु पत्तेयं अट्ठेव य रायहाणीओ ॥ १०८ ॥

जन्नामा से देवी तन्नामा तासि रायहाणीओ ।
ईसाणदेवरन्नो तायत्तीसाण उत्तरओ ॥ १०९ ॥

[गा० ११०. कुंडलसमुद्दो]

बावन्ना बायाला छलसीई दस य जोयणसहस्सा ५२४२८६१०००० ।
गोतित्थेण विरहिअं खेत्तं खलु कुंडलसमुद्दे ॥ ११० ॥

[गा० १११. रुयगदीवो]

दसकोडिसहस्साइं चत्तारि सयाइं पंचसीयाइं ।
छावत्तरिं च लक्खा १०४८५७६०००० विक्खंभो रुयगदीवस्स ॥१११॥

[गा० ११२-११६. रुयगनगो]

रुयगवरस्स य मज्झे णगुत्तमो होइ पव्वओ रुयगो ।
पागारसरिसरूवो रुयगं दीवं विभयमाणो ॥ ११२ ॥

रुयगस्स उ उस्सेहो चउरासीई भवे सहस्साइं ८४००० ।
एगं चेव सहस्सं १००० धरणियलमहे समोगाढो ॥ ११३ ॥

दस चेव सहस्सा खलु बावीसं १००२२ जोयणाइं बोद्धव्वा ।
मूलम्मि उ विक्खंभो साहीओ रुयगसेलस्स ॥ ११४ ॥

सत्तेव सहस्सा खलु बावीसं जोयणाइं बोद्धव्वा ।
मज्झम्मि य विक्खंभो रुयगस्स उ पव्वयस्स भवे ॥ ११५ ॥

चत्तारि सहस्साइं चउवीसं ४०२४ जोयणा य बोद्धव्वा ।
सिहरतले विक्खंभो रुयगस्स उ पव्वयस्स भवे ॥ ११६ ॥

[गा० ११७-१२६. रुयगनगे कूडा]

सिहरतलम्मि उ रुयगस्स होंति कूडा चउद्दिसिं तत्थ ।
पुव्वाइआणुपुव्वी तेसिं नामाइं कित्ते हं ॥ ११७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०८) शक्र देवराज और उनकी तैंतीसों अग्रमहिषियों की प्रत्येक की आठ-आठ राजधानियाँ हैं।

(१०९) उत्तर दिशा की ओर (जो) तैंतीस ईशान देवराज हैं उनकी जिस नाम वाली देवियाँ हैं उनकी उसी नाम वाली राजधानियाँ हैं।

(११०. कुण्डल समुद्र)

(११०) कुण्डल समुद्र में बावन (अरब) बयालीस (करोड़) छियासी (लाख) दस हजार (योजन) क्षेत्र गोतीर्थ से रहित हैं।

(१११. रुचक द्वीप)

(१११) रुचक द्वीप का विस्तार दस हजार चार सौ पिच्चासी करोड़ छिहत्तर लाख (योजन) है।

(११२–११६ रुचक पर्वत)

(११२) रुचक द्वीप के मध्य में रुचक नामक उत्तम पर्वत है। प्राकार के समान (यह पर्वत) रुचक द्वीप को विभाजित करता है।

(११३) रुचक पर्वत की ऊँचाई चौरासी हजार (योजन) है तथा नीचे भूमि तल में (यह पर्वत) एक हजार (योजन) समान रूप से गहरा है।

(११४) रुचक पर्वत का विस्तार अधो भाग में दस हजार बावीस योजन से कुछ अधिक जानना चाहिए।

(११५) रुचक पर्वत का विस्तार मध्य में सात हजार बावीस योजन ही है, ऐसा जानना चाहिए।

(११६) रुचक पर्वत का विस्तार शिखरतल पर चार हजार चौबीस योजन है, ऐसा जानना चाहिए।

(११७-१२६. रुचक पर्वत पर शिखर)

(११७) उस रुचक पर्वत के शिखर-तल पर चारों दिशाओं में शिखर हैं। पूर्व आदि दिशाओं के अनुक्रम से मैं उनके नामों को कहता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुव्वेण अट्ठ कूडा, दक्खिणओ अट्ठ, अट्ठ अवरेणं ।
उत्तरओ अट्ठ भवे चउद्दिसिं होंति रुयगस्स ॥ ११८ ॥
कणगे १ कंचणगे २ तवण ३ दिसासोवत्थिए ४ अरिट्ठे ५ य ।
चंदण ६ अंजणमूले ७ वइरे ८ पुण अट्ठमे भणिए ॥ ११९ ॥
नाणारयणविचित्ता उज्जोवंता हुयासणसिहा व ।
एए अट्ठ वि कूडा हवंति पुव्वेण रुयगस्स ॥ १२० ॥

फलिहे १ रयणे २ भवणे ३ पउमे ४ नलिणे ५ ससी ६ य नायव्वे ।
वेसमणे ७ वेरुलिए ८ रुयगस्स हवंति दक्खिणओ ॥ १२१ ॥
नाणारयणविचित्ता अणोवमा [1]धंतरूवसंकासा ।
एए अट्ठ वि कूडा रुयगस्स हवंति दक्खिणओ ॥ १२२ ॥

अमोहे १ सुप्पबुद्धे य २ हिमवं ३ मंदिरे ४ इ य ।
रुयगे ५ रुयगुत्तरे ६ चंदे ७ अट्ठमे य सुदंसणे ८ ॥ १२३ ॥
नाणारयणविचित्ता अणोवमा [2]धंतरूवसंकासा ।
एए अट्ठ वि कूडा रुयगस्स वि होंति पच्छिमओ ॥ १२४ ॥

विजए १ य वेजयंते २ जयंत ३ अपराइए ४ य बोद्धवे ।
कुंडल ५ रुयगे ६ रयणुच्चए ७ य तह सव्वरयणे ८ य ॥ १२५ ॥
नाणारयणविचित्ता उज्जोवेंता हुयासणसिहा व ।
एए अट्ठ वि कूडा रुयगस्स हवंति उत्तरओ ॥ १२६ ॥

[गा० १२७-१४२. दिसाकुमारीओ तट्ठाणाणि य]

पलिओवमट्ठिईया एएसुं खलु हवंति कूडेसुं ।
पुव्वेण आणुपुव्वी दिसाकुमारीण ते हुंति ॥ १२७ ॥

नंदुत्तरा १ य नंदा २ आणंदा ३ तह य नंदिसेणा ४ य ।
विजया ५ य वेजयंती ६ जयंति ७ अवराइया ८ चेव ॥१२८॥
एया पुरत्थिमेणं रुयगम्मि उ अट्ठ होंति देवीओ ।
पुव्वेण जे उ कूडा अट्ठ वि रुयगे तहिं एया ॥१२९॥

---

१. वन्नरूवसंकासा हं० ।
२. वन्नरूवसंकासा हं० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११८–१२०) पूर्व दिशा में आठ, दक्षिण दिशा में आठ, पश्चिम दिशा में आठ और उत्तर दिशा में भी आठ शिखर हैं। (इस प्रकार) रुचक पर्वत की चारों दिशाओं में (कुल बत्तीस) (शिखर) हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) कनक, (२) काञ्चन, (३) तपन, (४) दिशास्वस्तिक, (५) अरिष्ट, (६) चंदन, (७) अञ्जनमूल और (८) वज्र। अग्नि ज्वाला के समान नाना रत्नों से विचित्र प्रकाश करने वाले ये आठों ही शिखर रुचक पर्वत की पूर्व दिशा में हैं।

(१२१–१२२) (१) स्फटिक, (२) रत्न, (३) भवन, (४) पद्म, (५) नलिन, (६) शशि, (७) वैश्रमण और (८) वेडूर्य—ये आठ शिखर रुचक पर्वत की दक्षिण दिशा में हैं, (ऐसा) जानना चाहिए। अग्नि में तपी हुई अनुपम मूर्ति के समान नाना रत्नों से विचित्रित ये आठों ही शिखर रुचक पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर हैं।

(१२३–१२४) (१) अमोह, (२) सुप्रबुद्ध, (३) हिमवत्, (४) मंदिर, (५) रुचक, (६) रुचकोत्तर, (७) चन्द्र और (८) सुदर्शन। अग्नि में तपी हुई अनुपम मूर्ति के समान नाना रत्नों से विचित्रित ये आठों ही शिखर रुचक पर्वत की पश्चिम दिशा की ओर हैं।

(१२५–१२६) (१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयंत, (४) अपराजित, (५) कुंडल, (६) रुचक, (७) रत्नोच्चय और उसी तरह (८) सर्व-रत्न (शिखर) जानना चाहिए। अग्नि ज्वाला की तरह नाना रत्नों से विचित्र प्रकाश करने वाले ये आठों ही शिखर रुचक पर्वत की उत्तर दिशा की ओर हैं।

(१२७–१४२. दिशाकुमारियाँ और उनके स्थान)

(१२७) इन शिखरों पर (जितने) पल्योपम स्थिति देवों की है, पूर्व (आदि) दिशाओं के अनुक्रम से वही स्थिति दिशाकुमारियों की है।

(१२८-१२९) (१) नन्दोत्तरा, (२) नन्दा, (३) आनन्दा, (४) नंदिषेणा, (५) विजया, (६) वैजयन्ती, (७) जयन्ती और उसी प्रकार (८) अपराजिता। ये आठ देवियाँ रुचक पर्वत पर पूर्व दिशा में हैं। रुचक पर्वत पर पूर्व दिशा में जो आठ शिखर हैं उन्हीं पर ये देवियाँ (रहती) हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लच्छिमई १ सेसमई २ चित्तगुत्ता ३ वसुंधरा ४ ।
समाहारा ५ सुप्पदिन्ना ६ सुप्पबुद्धा ७ जसोधरा ८ ॥१३०॥
एयाओ दक्खिणेणं हवंति अट्ठ वि दिसाकुमारीओ ।
जे दक्खिणेण कूडा अट्ठ वि रुयगे तहिं एया ॥१३१॥

इलादेवी १ सुरादेवी २ पुहई ३ पउमावई ४ य विन्नेया ।
एगनासा ५ णवमिया ६ सीया ७ भद्दा ८ य अट्ठमिया ॥१३२॥
एयाओ पच्छिमदिसासमासिया अट्ठ दिसाकुमारीओ ।
अवरेण जे उ कूडा अट्ठ वि रुयगे तहिं एया ॥१३३॥

अलंबुसा १ मीसकेसी २ पुंडरगिणी ३ वारुणी ४ ।
[1]आसा ५ सग्गप्पभा ६ चेव सिरि ७ हिरी ८ चेव उत्तरओ ॥१३४॥
एया दिसाकुमारी कहिया सव्वण्णु-सव्वदरिसीहिं ।
जे उत्तरेण कूडा अट्ठ वि रुयगे तहिं एया ॥१३५॥

जोअणसाहस्सीया १००० रुयगवरे पव्वयम्मि चत्तारि ।
पुव्वाइआणुपुव्वी दीवाहिवईण आवासा ॥१३६॥
पुव्वेण उ वेरुलियं १ मणिकूडं पच्छिमे दिसाभागे २ ।
रुयगं पुण दक्खिणओ ३ रुयगुत्तरमुत्तरे पासे ४ ॥१३७॥

जोयणसहस्सिया १००० णं एए कूडा हवंति चत्तारि ।
पुव्वाइआणुपुव्वी ते होंति दिसाकुमारीणं ॥१३८॥

पुव्वेण य वेरुलियं १ मणिकूडं पच्छिमे दिसाभागे २ ।
रुयगं पुण दक्खिणओ ३ रुयगुत्तरमुत्तरे पासे ४ ॥ १३९ ॥
[2]सुरूवा १ रूवावई २ रूवकंता ३ रूवप्पभा ४ ।
पुव्वाइआणुप्पुव्वी चउद्दिसिं तेसु कूडेसु ॥ १४० ॥

---

१. जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति-पत्र ३९१ पृ० १. आवश्यकसूत्रहरिभद्रवृत्ति पत्र १२२ पृ० २. प्रभृतिस्थानेषु हासा सव्वप्पभा चेव इति पाठो भूम्ना दृश्यते, तथापि आवश्यकवृत्ति प्रत्यन्तरेषु 'हासा' स्थाने 'आसा' इत्यपि पाठ उपलभ्यते । अपि च लिपिभेदात् 'सव्वप्पभा' स्थाने 'सच्चप्पभा' इत्यपि पाठ आदर्शान्तरे दृश्यते ।

२. रुया रुयंसा सुरूवा रूवावई रूवकंता रुवप्पमा प्र० हं० मु० । अत्र पाठे नामचतुष्कस्थाने नामषट्कं जायते । 'रूयंसिआ' स्थाने 'रुयंसा' 'रूवासिआ' प्रभृतीन्यपि नामानि प्रत्यन्तरेषु ग्रन्थान्तरेषु च प्राप्यन्ते ॥ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यादौ रूया रूयंसिआ सुरूया रूयगावई इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१३०-१३१) (१) लक्ष्मीवती, (२) शेषवती, (३) चित्रगुप्ता, (४) वसुन्धरा, (५) समाहारा, (६) सुप्रतिज्ञा, (७) सुप्रबुद्धा और (८) यशोधरा। ये आठों ही दिशाकुमारियाँ दक्षिण दिशा में हैं। रुचक पर्वत पर दक्षिण दिशा में जो आठ शिखर हैं उन पर ये देवियाँ (रहती) हैं।

(१३२-१३३) (१) इलादेवी, (२) सुरादेवी, (३) पृथिवी, (४) पद्मावती, (५) एकनासा, (६) नवमिका, (७) शीता और (८) भद्रा। ये आठों दिशाकुमारियाँ पश्चिम दिशा में आश्रय प्राप्त किये हुए हैं। रुचक पर्वत पर पश्चिम दिशा में जो आठ शिखर हैं उन पर ये देवियाँ (रहती) हैं।

(१३४-१३५) (१) अलम्बुषा, (२) मिश्रकेशी, (३) पुण्डरकिणी, (४) वारुणी, (५) आशा, (६) स्वर्गप्रभा, (७) श्री और (८) ह्री। ये आठों दिशाकुमारियाँ सर्वज्ञ-सर्वदर्शियों के द्वारा उत्तर दिशा में कही गई हैं। रुचक पर्वत पर उत्तर दिशा में जो आठ शिखर हैं उन पर ये देवियाँ (रहती) हैं।

(१३६-१३७) रुचक पर्वत पर एक हजार योजन (आगे जाने पर) द्वीपकुमार अधिपति देवों के पूर्व आदि दिशाओं के अनुक्रम से चार आवास हैं—(१) पूर्व दिशा में वेडूर्य, (२) पश्चिम दिशा में मणिकूट, (३) दक्षिण दिशा में रुचक तथा (४) उत्तर दिशा में रुचकोत्तर।

(१३८) (रुचक पर्वत पर) एक हजार योजन (जाने पर) ये जो चार शिखर (द्वीपकुमार देवों के) हैं वे (चारों शिखर) पूर्व आदि दिशाओं के अनुक्रम से दिशाकुमारियों के भी हैं।

(१३९-१४०) (१) पूर्व दिशा में वेडूर्य, (२) पश्चिम दिशा में मणिकूट, (३) दक्षिण दिशा में रुचक तथा (४) उत्तर दिशा में रुचकोत्तर (शिखर हैं)। चारों दिशाओं में (स्थित) उन शिखरों पर पूर्व आदि दिशाओं के अनुक्रम से ये चार दिशाकुमारियाँ रहती हैं—(१) सुरूपा, (२) रूपवती, (३) रूपकान्ता और (४) रूपप्रभा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पलिओवमं दिवड्ढं ठिई उ एयासि होइ सव्वासिं ।
एक्केक्कमपरियायं होई अट्ठण्ह कूडाणं ॥ १४१ ॥

पुव्वेण सोत्थिकूडं १ अवरेण य नंदणं भवे कूडं २ ।
दक्खिणओ लोगहियं ३ उत्तरओ सव्वभूयहियं ४ ॥ १४२ ॥

[गा. १४३-१४८. दिसागइंदा]

जोयणसाहस्सीया १००० एए कूडा हवंति चत्तारि ।
पुव्वाइआणुपुव्वी [1]दिसागइंदाण ते होंति ॥ १४३ ॥

[2]पउमुत्तर १ नीलवंते २ सुहत्थी ३ अंजणगिरी ४ ।
एए दिसागइंदा दिवड्ढपलिओवमठितीआ ॥ १४४ ॥

पुव्वेण होइ विमलं १ सयंपहं दक्खिणे दिसाभाए २ ।
[3]अवरे पुण पच्छिमओ (?) ३ णिच्चुज्जोयं च उत्तरओ ४ ॥१४ ॥

जोयणसाहस्सीया १००० एए कूडा हवंति चत्तारि ।
पुव्वाइआणुपुव्वी विज्जुकुमारीण ते होंति ॥ १४६ ॥

---

१. अत्र यद्यपि सर्वास्वपि प्रतिषु दिसाकुमारीण ते होंति इति पाठो वर्त्तते । किन्तु नायं पाठः सङ्गतः । अभिधानराजेन्द्रेऽपि दिसागइंदशब्दे उद्धृतेऽस्मिन् पाठे दिसागइंदाण इत्येव पाठो निष्टङ्कितो दृश्यते । अपि च दिशाकुमारीकूटानि उपरि १३८-३९-४० गाथासु गतानीति ।

२. "पुव्वावरभाएसुं सीदोदणदीए भद्दसालवणे ।
सिद्धिकयंजणसेला णामेणं दिग्गइंदि त्ति ॥ २१०३ ॥....
सीदाणदीए त्ततो उत्तरतीरम्मि दक्खिणे तीरे ।
पुव्वोदिदकमजुत्ता पउमोत्तरणीलदिग्गइंदाओ ॥ २१३४ ॥
णवरि विसेसो एक्को सोमो णामेण चेट्ठदे तेसुं ।
सोहम्मिदस्स तहा वाहणदेओ जमो णाम ॥ २१३५ ॥
तिलोयपण्णत्ती महाधिकार पत्र ४१६ ।

"सीताया उत्तरे तीरे कूटं पद्मोत्तरं मतम् ।
दक्षिणे नीलवत्कूटं पुरस्तान्मेरुपर्वतात् ॥ १५८ ॥
सीतोदापूर्वतीरस्थं स्वस्तिकं कूटमिष्यते ।
नाम्नाञ्जनगिरिः पश्चान्मेरोर्दक्षिणतश्च ते ॥ १५९ ॥"
लोकविभाग विभाग १ पत्र १९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१४१) इन सबकी स्थिति डेढ़ पल्योपम है और इन आठों ही शिखरों का परस्पर में कोई भेद नहीं है।

(१४२) (१) पूर्व दिशा में स्वातिकूट, (२) पश्चिम दिशा में नंदनकूट, (३) दक्षिण दिशा में लोकहित तथा (४) उत्तर दिशा में सर्वभूतहित (शिखर हैं)।

(१४३-१४८. दिग्हस्ति शिखर)

(१४३-१४४) पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से दिग्हस्ति देवों के एक हजार योजन वाले ये चार शिखर हैं—(१) पद्मोत्तर, (२) नीलवंत, (३) सुहस्ति और (४) अंजनगिरी। ये दिगहस्ति देव डेढ़ पल्योपम स्थिति वाले हैं।

(१४५-१४६) पूर्वादि दिशाओं के अनुक्रम से विद्युत् कुमारी देवियों के एक हजार योजन वाले ये चार शिखर हैं—(१) पूर्व दिशा में विमल, (२) दक्षिण दिशा में स्वयंप्रभ, (३) पश्चिम दिशा में नित्यालोक[1] तथा (४) उत्तर दिशा में नित्योद्द्योत।

---

१. प्रस्तुति कृति में पश्चिम दिशा के शिखर का नाम स्पष्टतः उल्लिखित नहीं है किन्तु तिलोयपण्णत्ति (महाधिकार ५ गाथा १६०) में इस शिखर का नाम नित्यालोक (णिच्चालोयं) बतलाया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्ता १ य चित्तकणगा २ सतेरा ३ सोयामणी ४ य णायव्वा ।
एया विज्जुकुमारी साहियपलिओवमट्ठितिया ॥१४७॥
विज्जूयकुमारीणं दक्खिणकूडा दिसागइंदाणं ।
तत्तो महयरियाणं विज्जुकुमारीण[1] उद्धं ति ॥१४८॥

[गा० १४९--१५५. रइकरपव्वया सक्कीसाणसामाणाणं उप्पायपव्वया रायहाणीओ य]

रुयगवरस्स उ बाहिं ओगाहित्ताण अट्ठ लक्खाइं ।
चुलसीइ सहस्साइं रइकरगा पव्वया रम्मा ॥१४९॥

सक्कस्स देवरण्णो सामाणा खलु हवंति जे देवा ।
उप्पायपव्वया खलु पत्तेयं तेसि बोद्धव्वा ॥१५०॥

एत्तो कक्केक्कस्स उ चउद्दिसिं होंति रायहाणीओ ।
जंबुद्दीवसमाओ विक्खंभा-[2]ऽऽयामउत्ताओ ॥१५१॥

पढमा उ सयसहस्से, बिइयासुं चेव सयसहस्सेसु ।
पुव्वाइआणुपुव्वी तेसिं नामाणि कित्ते हं ॥१५२॥

पुव्वाइआणुपुव्वी तत्तो नंदा १ उ होइ नंदवई २ ।
अवरेण य नंदुत्तर ३ उत्तरओ नंदिसेणा ४ उ ॥१५३॥

"णिच्चुज्जोवं विमलं णिच्चालोयं सयंपहं कूडं ।
उत्तरपुव्वदिसासुं दक्खिणपच्छिमदिसासु कमा ॥१६०॥
सोदाविणि त्ति कणया सदपददेवी य कणयचेत्त त्ति ।
उज्जोवकारिणीओ दिसासु जिणजम्मकल्लाणे ॥१६१॥"
तिलोयपण्णत्ती महाधिकार पत्र ५४९ ॥

"पूर्वे तु विमलकूटं नित्यालोकं स्वयंप्रभम् ।
नित्योद्द्योतं तदन्तः स्युस्तुल्यानि गृहमानकैः ॥ ८३ ॥
कनका विमले कूटे दक्षिणे च शतह्रदा ।
ततः कनकचित्रा च सौदामिन्युत्तरे स्थिता ॥ ८४ ॥
अर्हतां जन्मकालेषु दिशा उद्द्योतयन्ति ताः ।
श्रीवत्सपरिवाराद्यैः सर्वा एता इति स्मृताः ॥ ८५ ॥
लोकविभाग ४ पत्र ८१ ॥

१. °ण मज्झओ होंति प्र० मु० ।
२. °मओ ताओ प्र० मु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१४७-१४८) दिग्हस्ति शिखरों की दक्षिण दिशा में जो विद्युतकुमारी देवियों के शिखर हैं उन पर (ये चार) प्रधान विद्युतकुमारियाँ रहती हैं—(१) चित्रा, (२) चित्रकनका, (३) शतेरा और (४) सौदामिनी। ये विद्युतकुमारी देवियाँ सविशेष पल्योपम स्थिति वाली हैं।

(१४९-१५५ रतिकर पर्वत पर शक्र-ईशान सामानिक देवों के उत्पाद पर्वत और राजधानियाँ)

(१४९) रुचक पर्वत के बाहर आठ लाख चौरासी हजार (योजन) चलने पर मनोरम रतिकर पर्वत हैं।

(१५०) शक्र देवराज के समान जो देव हैं उनके भी प्रत्येक के उत्पाद पर्वत जानने चाहिए।

(१५१) इन उत्पाद पर्वतों की चारों दिशाओं में एक-एक (देव) की जम्बूद्वीप के समान लम्बाई और चौड़ाई वाली राजधानियाँ कही गई हैं।

(१५२) प्रथम राजधानी एक लाख योजन की है इसी प्रकार दूसरी आदि अन्य राजधानियाँ भी एक-एक लाख योजन की हैं। पूर्व आदि दिशाओं के अनुक्रम से मैं उनके नामों को कहता हूँ।

(१५३) पूर्व आदि दिशाओं में अनुक्रम से (पूर्व दिशा में) नंदा, (दक्षिण दिशा में) नन्दवती, पश्चिम दिशा में नन्दोत्तरा तथा उत्तर दिशा में नन्दिषेणा (राजधानियाँ) हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भद्दा १ य सुभद्दा २ या कुमुया ३ पुण होइ पुंडरिगिणी ४ उ ।
चक्कज्झया १ य सच्चा २ सव्वा ३ वयरज्झया ४ चेव ॥१५४॥

एवं ईसाणस्स वि सामाणसुराण रइकरा रम्मा ।
नंदाईणगरीहि उ परियरिया उत्तरे पासे ॥१५५॥

[गा० १५६--१६५. जंबुद्दीवाइदीव-समुद्दाणं अहिवइणो देवा]

[1]जंबुद्दीवाहिवई अणाढिओ, सुट्ठिओ य लवणस्स ।
एत्तो य आणुपुव्वी दो दो दीवे समुद्दे य ॥१५६॥

---

१. "आदर-अणादरक्खा जंबूदीवस्स अहिवई होंति ।
तह य पभासो पियदंसणो य लवणंबुरासिम्मि ॥ ३८ ॥
भुंजेदि प्पियणामा दंसणणामा य धादईसंडं ।
कालोदयस्स पहुणो काल-महाकालणामा य ॥ ३९ ॥
पउमो पुंडरियऽक्खो दीवं भुंजंति पोक्खरवरक्खं ।
चक्खु-सुचक्खु पहुणो होंति य मणुसुत्तरगिरिस्स ॥ ४० ॥
सिरिपहु-सिरिधरणामा देवा पालंति पोक्खरसमुद्दं ।
वरुणो वरुणपहक्खो भुंजंते चारु वारुणीदीवं ॥ ४१ ॥
वारुणिवरजलहिपहू णामेणं मज्झ-मज्झिमा देवा ।
पंडुरय-पुप्फदंता दीवं भुंजंति खीरवरं ॥ ४२ ॥
विमलपहक्खो विमलो खीरवरं वाहिणीसआहेवइणो ।
सुप्पह-घदवरदेवा घदवरदीवस्स अधिणाहा ॥ ४३ ॥
उत्तर-महप्पहक्खा देवा रक्खंति घदवरंबुणिहिं ।
कणय-कणयाभणामा दीवं पालंति खोदवरं ॥ ४४ ॥
पुण्ण-प्पुण्णपहक्खा देवा रक्खंति खोदवरसिधुं ।
णंदीसरम्मि दीवे गंध-महागंधया पहुणो ॥ ४५ ॥
णंदीसरवारिणिहिं रक्खंते णंदि-णंदिपहुणामा ।
चंद-सुभद्दा देवा भुंजंते अरुणवरदीवं ॥ ४६ ॥
अरुणवरवारिरासिं रक्खंते अरुण-अरुणपहुणामा ।
अरुणब्भासं दीवं भुजंति सुगंध-सव्वगंधसुरा ॥ ४७ ॥
सेसाणं दीवाणं वारिणिहीणं च अहिवई देवा ।
जे केइ ताण णामस्सुवएसो संपहि पणट्ठो ॥ ४८ ॥
पढमपवण्णिददेवा दक्खिणभागम्मि दीव-उवहीणं ।
चरिमुच्चारिददेवा चेट्ठंते उत्तरे भाए ॥ ४९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१५४) इसी क्रम में भद्रा, सुभद्रा, कुमुदा, पुण्डरीकिणी, चक्रध्वजा, सत्या, सर्वा और वज्रध्वजा है।[1]

(१५५) इसी प्रकार नन्दा आदि नगरियों को परिवेष्टित करते हुए उत्तर दिशा में ईशान इन्द्र और सामानिक देवों के रमणीय रतिकर पर्वत हैं।

(१५६-१६५. जम्बूद्वीप आदि द्वीपों और समुद्रों के अधिपति देव)

(१५६-१६०) जम्बूद्वीप का अधिपति देव अनादृत है और लवणसमुद्र का अधिपति देव सुस्थित है। इसके पश्चात् अन्य द्वीप-समुद्रों में अनुक्रम

णियणियदीउवहीणं उवरिमतलसंठिदेसु णयरेसु ।
बहुविहपरिवारजुदा कीडंते बहुविणोदेणं ॥ ५० ॥

एक्कपलिदोवमाऊ पत्तेक्कं दसधणूणि उत्तुंगा ।
भुंजंते विविहसुहं समचउरस्संगसंठाणा ॥ ५१ ॥

जंबूदीवाहिंतो अट्ठमओ होदि भुवणविक्खादो ।
णंदीसरो त्ति दीओ णंदीसरजलिहिपरिखित्तो ॥ ५२ ॥

तिलोयपण्णत्ती महाधिकार ५ पत्र ५३५।

"द्वीपस्य प्रथमस्यास्य व्यन्तरोऽनादरः प्रभुः ।
सुस्थितो लवणस्यापि प्रभास-प्रियदर्शनौ ॥ २४ ॥

कालश्चैव महाकालः कालोदे दक्षिणोत्तरौ ।
पद्मश्च पुण्डरीकश्च पुष्कराधिपती सुरौ ॥ २५ ॥

चक्षुष्मांश्च सुचक्षुश्च मानुषोत्तरपर्वते ।
द्वौ द्वावेवं सुरौ वेद्यौ द्वीपे तत्सागरेऽपि च ॥ २६ ॥

श्रीप्रभश्रीधरौ देवौ वरुणो वरुणप्रभः ।
मध्यश्च मध्यमश्चोभौ वारुणीवरसागरे ॥ २७ ॥

पाण्ड(ण्डु)रः पुष्पदन्तश्च विमलो विमलप्रभः ।
सुप्रभस्य(श्च) घृताख्यस्य उत्तरश्च महाप्रभः ॥ २८ ॥

कनकः कनकाभश्च पूर्णः पूर्णप्रभस्तथा ।
गन्धश्चान्यो महागन्धो नन्दि नन्दिप्रभस्तथा ॥ २९ ॥

भद्रश्चैव सुभद्रश्च अरुणश्चारुणप्रभः ।
सुगन्धः सर्वगन्धश्च अरुणोदे तु सागरे ॥ ३० ॥

एवं द्वीपसमुद्राणां द्वौ द्वावधिपती स्मृतौ ।
दक्षिण प्रथमोक्तोऽत्र द्वितीयश्चोत्तरापतिः ॥ ३१ ॥"

लोकविभाग विभाग ४ पत्र ७५।

१. मूल गाथा से स्पष्ट नहीं हो रहा है कि ये नाम किनके हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]पियदंसणे १ पभासे २ काले देवे १ तहा [2]महाकाले २।
[3]पउमे १ य महापउमे २, सिरीधरे[4] १ महिधरे २ चेव ॥१५७॥
[5]पभे १ य सुप्पभे २ चेव, [6]अग्गिदेवे १ तहेव अग्गिजसे २।
[7]कणगे १ कणगप्पभे २ चेव, तत्तो [8]कंते १ य अइकंते २ ॥१५८॥
[9]दामड्ढी १ हरिवारण २ ततो [10]सुमणे १ य सोमणंसे २ य।
[11]अविसोग १ वियसोगे २ [12]सुभद्दभद्दे १ सुमणभद्दे २ ॥१५९॥
संखवरे दीवम्मि य संखे १ संखप्पभे २ य दो देवा।
कणगे १ कणगप्पभे २ चेव संखवरसमुद्द अभिवाओ ॥१६०॥

मणिप्पभे १ मणिहंसे २ य, कामपाले १ य कुसुमकेऊ २ य।
कुंडल १ कुंडलभद्दे २ समुद्ददभद्दे १ सुमणभद्दे २ ॥१६१॥
[13]सव्वुत्त(? सव्वट्ठ) १ मणोरह २ सव्वकामसिद्धे ३ य रुयग-णगदेवा।
तह माणुसुत्तरनगे [14]चक्खुसुहे १ चक्खुकंते २ य ॥१६२॥

तेण परं दीवाणं उदहीण य सरिसनामगा देवा।
एक्केक्कसरिसनामा असंखेज्जा होंति णायव्वा ॥१६३॥

वासाणं च दहाणं वासहराणं महाणईणं च।
दीवाणं उदहीणं पलिओवमगाऽऽउ अहिवइणो ॥१६४॥

---

१. धातकीखण्डे प्रियदर्शन-प्रभासौ देवौ। २. कालोदे काल-महाकालौ देवौ। ३. पुष्करद्वीपे पद्म-महापद्मौ देवौ। ४. पुष्करसमुद्रे श्रीधर-महीधरौ देवौ। ५. मणिप्पभे य प्र० मु०। वारुणिसमुद्रे प्रभ-सुप्रभौ देवौ। ६. क्षीरसमुद्रे अग्निदेव-अग्नियशसौ देवौ। ७. घृतसमुद्रे कनक-कनकप्रभौ देवौ ८. इक्षुसमुद्रे कान्त-अतिकान्तौ देवौ।
९. नन्दीश्वरद्वीपे दामर्द्धि-हरिवारणौ देवौ। १०. नन्दीश्वरसमुद्रे सुमनः-सौमनसदेवौ। ११. अरुणद्वीपे अविशोक-वीतशोकौ देवौ। १२. अरुणसमुद्रे सुभद्रभद्र-सुमनोभद्रौ देवौ।
१३. रुचकद्वीपे सर्वार्थि-मनोरथौ देवौ। रुचकपर्वते सर्वकामसिद्धो देवः। अयं विभागः प्रमाणमप्रमाणं वा इत्यत्रार्थे तज्ज्ञा एव प्रमाणम्। १४. अत्र लिपि-भेदात् चक्खुमुहे १ चक्खुकन्ने य इति पाठे 'चक्षुर्मुख १ चक्षुष्कर्ण २' इत्येव-मपि देवनामकल्पना नासङ्गता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से दो-दो अधिपति देव हैं। (धातकीखण्ड द्वीप में) (१) प्रियदर्शन और (२) प्रभास, (कालोदधि समुद्र में) (१) कालदेव और (२) महाकाल, (पुष्करवर द्वीप में) (१) पद्म और (२) महापद्म, (पुष्करवरसमुद्र में) (१) श्रीधर और (२) महोधर, (वारुणीवर-द्वीप में) (१) प्रभ और (२) सुप्रभ, (वारुणीवर समुद्र में) (१) अग्निदेव और (२) अग्नियश, (क्षीरवर द्वीप में) (१) कनक और (२) कनकप्रभ, (क्षीरवर समुद्र में) (१) कान्त और (२) अतिकान्त, (घृतवर द्वीप में) (१) दार्मद्धि और (२) हरि-वारण, (घृतवर समुद्र में) (१) सुमन और (२) सौमनस, (क्षोदवर द्वीप में) (१) अविशोक और (२) वीतशोक, (क्षोदवर समुद्र में) (१) सुभद्रभद्र और (२) सुमनभद्र इसी प्रकार शंखवर द्वीप में (१) शंख और (२) शंखप्रभ देव तथा शंखवर समुद्र में स्थित (१) कनक और (२) कनकप्रभ नामक ये दो-दो अधिपति देव अभिवादन योग्य हैं।

(१६१-१६२) इसी प्रकार (नन्दीश्वरद्वीप में) (१) मणिप्रभ और (२) मणिहंस, (नन्दीश्वर समुद्र में) (१) कामपाल और (२) कुसुमकेतु, (अरुणवर द्वीप में) (१) कुंडल और (२) कुंडल-भद्र, (अरुणवर समुद्र में) (१) समुद्रभद्र और (२) सुमनभद्र, रुचक पर्वत पर (१) सर्वार्थ, (२) मनोरथ और (३) सर्वकामसिद्ध (ये तीन) देव हैं तथा मानुषोत्तर पर्वत पर (१) चक्षुसुख और (२) चक्षु कांत—ये दो अधिपति देव हैं।

(१६३) इनके पश्चात् अन्य द्वीपों और समुद्रों में उनके ही समान नाम वाले अधिपति देव हैं। पुनः यह जानना चाहिए कि एक समान नाम वाले असंख्य देव होते हैं।

(१६४) वासों, द्रहों, वर्षधर पर्वतों, महानदियों, द्वीपों और समुद्रों के अधिपति देव एक पल्योपम काय-स्थिति वाले होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीवाहिवईण भवे उववाओ दीवमज्झयारम्मि ।
उदहिस्स य आकीलादीवेसुं सागरवईणं ॥१६५॥

[गा० १६६–१७३. तेगिच्छी पव्वओ]

रुयगाओ समुद्दाओ दीव-समुद्दा भवे असंखेज्जा ।
गंतूण होइ अरुणो दीवो, अरुणो तओ उदही ॥१६६॥

बायालीस सहस्सा ४२००० [1]अरुणं ओगाहिऊण दक्खिणओ ।
वरवइरविग्गहीओ सिलनिचओ तत्थ तेगिच्छी ॥१६७॥

सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं १७२१ सो समुव्विद्धो ।
दस चेव जोयणसए बावीसे १०२२ वित्थडो हेट्ठा ॥१६८॥
चत्तारि जोयणसए चउवीसे ४२४ वित्थडो उ मज्झम्मि ।
सत्तेव य तेवीसे ७२३ सिहरतले वित्थडो होई ॥१६९॥

सत्तरसएक्कवीसाइं १७२१ पएसाणं सयाइं गंतूणं ।
एक्कारस छन्नउया ११९६ वड्ढंते दोसु पासेसु ॥१७०॥

[2]बत्तीस सया बत्तीसउत्तरा ३२३२ परिरओ विसेसूणो ।
[3]तेरस ईयालाइं १३४१ [4]बावीसं छलसिया २२८६ परिही ॥१७१॥

रयणमओ [5]पउमाए वणसंडेणं च संपरिक्खित्तो ।
मज्झे असोउववेढो, अड्ढाइज्जाइं उव्विद्धो ॥१७२॥

वित्थिण्णो पणुवीसं तत्थ य सीहासणं सपरिवारं ।
नाणामणि-रयणमयं उज्जोवंतं दस दिसाओ ॥१७३॥

---

१. अरुणसमुद्रमित्यर्थः । २. तेगिच्छिनगाधोभागपरिधिः ।
३. तेगिच्छिनगमध्यभागपरिधिः । ४. तेगिच्छिनगशिखरतलपरिधिः ।
५. पद्मवरवेदिकाया इत्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१६५) द्वीपाधिपति देवों की उत्पत्ति द्वीप के मध्य में होती है तथा समुद्राधिपति देवों की उत्पत्ति विशेष क्रीड़ा-द्वीपों में होती है।

(१६६--१७३ तिगिञ्छि पर्वत)

(१६६) रुचक समुद्र में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। (रुचक समुद्र में) जाने पर (पहले) अरूण द्वीप आता है, उसके बाद अरूण समुद्र।

(१६७) अरूण समुद्र में दक्षिण दिशा की ओर बयालिस हजार (योजन) जाने पर तिगिञ्छि पर्वत आता है (जिसकी) बीच की शिला उत्तम वज्र जैसी है।

(१६८-१६९) वह (तिगिञ्छि पर्वत) सत्रह सौ इक्कीस योजन समान रूप से ऊँचा है, अधोभाग में वह एक हजार बावीस योजन विस्तार वाला, मध्य में चार सौ चौबीस योजन विस्तार वाला तथा शिखरतल पर सात सौ तेबीस योजन विस्तार वाला है।[1]

(१७०) वह पर्वत सत्रह सौ इक्कीस योजन ऊँचा है। कुछ आगे जाने पर दोनों पार्श्वों में वह ग्यारह सौ छियानवें योजन है।[2]

(१७१) तिगिञ्छि पर्वत की परिधि भूतल पर बत्तीस सौ बत्तीस (योजन) से कुछ कम, मध्यतल पर तेरह सौ इकतालीस (योजन) तथा शिखर-तल पर बावीस सौ छियासी (योजन) है।[3]

(१७२) (तिगिञ्छि पर्वत) रत्नमय पद्मवेदिकाओं और वनखण्डों से वेष्टित है तथा मध्य भाग में वह ढाई सौ (योजन) ऊँचे अशोक वृक्षों से घिरा हुआ है।

(१७३) वहाँ दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले नानामणि रत्नों से युक्त पच्चीस योजन विस्तार वाला सपरिवार सिंहासन है।

---

१. यद्यपि पर्वत के सन्दर्भ में ऐसी कल्पना करना उचित नहीं है कि वह अधोभाग में तथा शिखर तल पर विस्तृत हो किन्तु मध्य में वह संकीर्ण हो, तथापि उपरोक्त गाथा के आधार पर तिगिञ्छि पर्वत का आकार ऐसा ही निर्धारित होता है। तिगिञ्छि पर्वत की मध्यवर्ती शिला उत्तम वज्र की मानी गई है, इसलिए उसका ऐसा आकार संभव है।

२. अर्थ सम्यग् करने की दृष्टि से हमने 'वड्ढंते' का 'वट्टंते' रूप मानकर अर्थ किया है। गाथा का वास्तविक अर्थ विचारणीय है।

३. तिगिञ्छि पर्वत मध्य में संकडा है इसलिए इसकी मध्यवर्ती परिधि भी कम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[गा० १७४–२२५. चमरचंचा रायहाणी]

[1]तेगिच्छि दाहिणओ, छक्कोडिसयाइं कोडिपणपन्नं ।
पणतीसं लक्खाइं पण्णसहस्से ६५५३५५०००० अइवइत्ता ॥१७४॥
ओगाहित्ताणमहे चत्तालीसं भवे सहस्साइं ४०००० ।
अब्भितरचउरंसा बाहिं वट्टा चमरचंचा ॥१७५॥
एगं च सयसहस्सं १००००० वित्थिण्णो होइ आणुपुव्वीए ।
तं तिगुणं सविसेसं परीरएणं तु बोद्धव्वा ॥१७६॥

पायारो नायव्वो य रायहाणीए चमरचंचाए ।
जोयणसयं दिवड्ढं १५० उव्विद्धो होइ सव्वत्तो ॥१७७॥

पन्नासं ५० पणुवीसं २५ अड्ढत्तेरस १२½ उ जोयणाइं तु ।
मूले मज्झे उवरिं विक्खंभो सुवन्नसालस्स ॥१७८॥

कविसीसया य नियमा आयामेणऽद्धजोयणं सव्वे ।
कोसं विक्खंभेणं, देसूणं अद्धजोयणं उच्चा ॥१७९॥

एक्केक्कीबाहाए दाराणं पंच पंच य सयाइं ५०० ।
तेसिं तू उच्चत्तं अड्ढाइज्जा सया २५० होंति ॥१८०॥

बाराणं विक्खंभो पणवीससयं २५०० तहा पवेसो य ।
नगरीए चाउदिसिं पंचेव उ जोयणसयाइं ५०० ॥१८१॥
गंतूणं वणसंडा चउरो, आयामओ य ते भणिया ।
साहीयसहस्सं जोयणाण १००० विक्खंभओ पंच ॥१८२॥

---

१. तेगिच्छि दाहिणओ उणट्ठकोडीसयाइं कोडिपणपन्नं । सं लक्खाइं पंच य कोसे अइवइत्ता । इत्येवमतिविकृताकारा गाथा सर्वासु प्रतिषूपलभ्यते, अतो व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रपाठानुसारेण मया एतद्गाथापाठानुसन्धानं विहितमस्ति । तथा च व्याख्या-प्रज्ञप्तिसूत्रपाठः–"तस्स णं तिगिच्छिकूडस्स दाहिणेणं छक्कोडिसए पणपन्नं च कोडीओ पणतीसं च सतसहस्साइं पण्णासं च सहस्साइं अरुणोदए समुद्दे तिरियं वीइवइत्ता अहे रयणप्पभाए पुढवीए चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो चमरचंचानामं रायहाणी पन्नत्ता ।" श्रीमहावीरजैन विद्यालयप्रकाशितस्य 'वियाहपण्णत्तिसुत्तं भाग १' ग्रन्थस्य ११२ तमे पृष्ठे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१७४-२२५ चमरचंचा राजधानी)

(१७४-१७६) ज्ञातव्य है कि तिगिञ्छि पर्वत को लाँघकर दक्षिण दिशा की ओर छः सौ पचपन करोड़ पैंतीस लाख पचपन हजार (योजन) जाने पर और वहाँ से नीचे (रत्नप्रभा पृथ्वी की ओर) चालीस हजार (योजन) जाने पर चमरचंचा राजधानी है जो भीतर से चौरस और बाहर से वर्तुलाकार है। उसका विस्तार अनुक्रम से एक लाख योजन है और उसकी परिधि उससे तीन गुणा से कुछ अधिक है।

(१७७) ज्ञातव्य है कि चमरचंचा राजधानी का प्राकार सभी ओर से डेढ़ सौ योजन ऊँचा है।

(१७८) उस स्वर्णमय प्राकार का विष्कंभ (चौड़ाई) मूल में पचास योजन, मध्य में पच्चीस योजन तथा ऊपर में साढ़े बारह योजन है।

(१७९) प्राकार के सभी कपिशीर्षक (कंगूरे) आधा योजन लम्बे, एक कोस चौड़े तथा कुछ कम आधा योजन ऊंचे हैं।

(१८०) प्राकार की एक-एक भुजा में पाँच-पाँच सौ दरवाजे हैं, उनकी ऊँचाई ढाई सौ योजन है।

(१८१-१८२) द्वारों तथा उसी प्रकार प्रवेश मार्ग का विस्तार पच्चीस सौ (योजन) है। नगरी की चारों दिशाओं में पाँच सौ योजन जाने पर चार वनखण्ड हैं। वे वनखण्ड एक हजार योजन से कुछ अधिक लम्बे तथा पाँच योजन चौड़े कहे गए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दारपमाणा चउरो वडिंसका तत्थ पल्लयठितीया।
देवा असोअ १ तह सत्तिवन्न २ चंपे ३ य चूए ४ य ॥१८३॥

चंचाए बहुमज्झे विक्खंभाऽऽयामसोलससहस्से १६०००।
अह उवकारियलेणे बाहल्लेणऽड्ढजोयणिए ॥१८४॥
पउमवरवेइयाए वणसंडेणं च संपरिक्खित्ते।
तस्स बहुमज्झदेसे वडेंसगो परमरम्मो उ ॥१८५॥

दारप्पमाणसरिसो उ सो उ तत्थेव हवइ पासाओ।
सो होइ परिक्खित्तो चउहिं पासायपंतीहिं ॥१८६॥

सयमेगं पणुवीसं १२५, बासट्ठिं जोयणाइं अद्धं च ६२½।
एकत्तीस सकोसे ३१½ य ऊसिया, वित्थडा अद्धं ॥१८७॥

पासायस्स उ पुव्वुत्तरेण एत्थ उ सभा सुहम्मा उ।
तत्तो य चेइयघरं उववायसभा य हरओ य ॥१८८॥
अभिसेक्का-ऽलंकारिय-ववसाया ऊसिया उ छत्तीसं ३६।
पन्नासइ ५० आयामा, आयामऽद्धं २५ तु वित्थिण्णा ॥१८९॥

तिदिसिं होंति सुहम्माए तिन्नि दारा उ अट्ठ ८ उव्विद्धा।
विक्खंभो य पवेसो य जोयणा तेसि चत्तारि ४ ॥१९०॥

तेसिं पुरओ मुहमंडवा उ, पेच्छाघरा य तेसु भवे।
पेच्छाघराण मज्झे अक्खाडा आसणा रम्मा ॥१९१॥

पेच्छाघराण पुरओ थूभा, तेसिं चउद्दिसिं होंति।
पत्तेय पेढियाओ, जिणपडिमा एत्थ पत्तेयं ॥१९२॥

थूभाण होंति पुरओ [य] पेढिया, तत्थ चेइयदुमा उ।
चेइयदुमाण पुरओ उ पेढियाओ मणिमईओ ॥१९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१८३) वहाँ द्वार के समान विस्तार वाले तथा पल्योपम कायस्थिति वाले देवोंके चार विमान हैं—१. (अशोक देव का) अशोकावतंसक, २. (सप्तपर्ण देव का) सप्तपर्णावतंसक, ३. (चंपकदेव का) चम्पकावतंसक और ४. (चूत देव का) चूतावतंसक।

(१८४-१८५) चमरचंचा राजधानी के बहुमध्य भाग में सोलह हजार (योजन) लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी वनखण्डों से घिरी हुई श्रेष्ठ पद्मवेदिका है। उस चमरचंचा नगरी के बहुमध्य भाग में सर्वाधिक सुन्दर प्रासाद है।

(१८६) वहाँ द्वार के समान परिमाण वाला वह प्रासाद चारों तरफ से प्रासादों की पंक्तियों से घिरा हुआ है।

(१८७) वह प्रासाद एक सौ पच्चीस योजन लम्बा, उसका आधा अर्थात् साढ़े बासठ योजन चौड़ा तथा उसका आधा अर्थात् सवा इकतीस योजन ऊँचा है।

(१८८-१८९) प्रासाद की पूर्व-उत्तर दिशा में सुधर्मा सभा है उसके बाद चैत्यगृह, उपपात सभा और ह्रद (झील) है। वहाँ अभिषेक सभा, अलंकार सभा और व्यवसायसभा है जो छत्तीस (योजन) ऊँची, पचास (योजन) लम्बी और लम्बाई की आधी अर्थात् पच्चीस योजन चौड़ी हैं।

(१९०) सुधर्मा सभा की तीन दिशाओं में आठ योजन ऊँचे तीन द्वार हैं, उनकी एवं प्रवेश मार्ग की चौड़ाई चार योजन है।

(१९१) उन (द्वारों) के आगे मुखमण्डप[1] हैं और उनमें प्रेक्षागृह[2] हैं। प्रेक्षागृहों के मध्य में रमणीय अक्षवाटक[3] आसन हैं।

(१९२) प्रेक्षागृहों के आगे स्तूप हैं, उन स्तूपों की चारों दिशाओं में एक-एक पीठिका है। जिन पर एक-एक जिनप्रतिमा स्थित है।

(१९३) स्तूपों के आगे जो पीठिकाएँ हैं उन पर चैत्यवृक्ष हैं। चैत्यवृक्षों के आगे मणिमय पीठिकाएँ हैं।

---

१. देवालय आंगन को 'मुखमण्डप' कहा गया है।

२. रंगभूमि के सामने का वह स्थान जहाँ पर प्रेक्षकगण बैठते हैं, 'प्रेक्षागृह' कहलाता है।

३. प्रेक्षकों के बैठने का आसन 'अक्षवाटक' कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तासुप्परिं महिंदज्झया य, तेसु पुरओ भवे नंदा।
दसजोयण १० उव्वेहा, हरओ वि दसेव १० वित्थिण्णो ॥१९४॥

एसेव जिणघरस्स वि हवइ गमो, सेसियाण वि सभाणं।
जं पि य से नाणत्तं पि य वोच्छं समासेणं ॥१९५॥

बहुमज्झदेसे पेढिय, तत्थेव य माणवो भवे खंभो।
चउवीसकोडिमंसिय बारसमद्धं च हेट्ठुवरिं ॥१९६॥

फलया, तहियं नागदंतया य, सिक्का तहिं [च] वइरमया।
तत्थ उ होंति समुग्गा, जिणसकहा तत्थ पन्नत्ता ॥१९७॥

माणवगस्स य पुव्वेण आसणं, पच्छिमेण सयणिज्जं।
उत्तरओ सयणिज्जस्स होइ इंदज्झओ तुंगो ॥१९८॥

पहरणकोसो इंदज्झयस्स अवरेण इत्थ चोप्पालो।
फलिहप्पामोक्खाणं निक्खेवनिही पहरणाणं ॥१९९॥

जिणदेवछंदओ जिणघरम्मि पडिमाण तत्थ अट्ठसयं १०८।
दो दो चमरधरा खलु, पुरओ घंटाण अट्ठसयं १०८ ॥२००॥

सेससभाण उ मज्झे हवंति मणिपेढिया परमरम्मा।
तत्थाऽऽसणा महरिहा, उववायसभाए सयणिज्जं ॥२०१॥

मुहमंडव पेच्छाहर हरओ दारा य सह पमाणाइं।
थूभा उ अट्ठ उ भवे दारस्स उ मंडवाणं तु ॥२०२॥

उव्विद्धा [1]वीसं, उग्गया य वित्थिण्ण जोयणऽद्धं तु।
माणवग महिंदझया हवंति इंदज्झया चेव ॥२०३॥

जिणदुम-सुहम्म-चेइयघरेसु जा पेढिया य तत्थ भवे।
चउजोयण ४ बाहल्ला, अट्ठेव ८ उ वित्थडाऽऽयामा ॥२०४॥

---

१. तीसं हं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१९४) उन पीठिकाओं के ऊपर महेन्द्रध्वज है। उनके आगे नंदा पुष्करिणी है जो दस योजन गहरी तथा सभी ओर से दस योजन ही विस्तार वाली है।

(१९५) इसीप्रकार का वर्णन जिनमंदिर का तथा शेष बची हुई सभाओं का भी है, किन्तु जो कुछ भिन्नता है उसको मैं यहाँ संक्षेप में कहता हूँ।

(१९६) बहुमध्य भाग में जो चबुतरा है उस पर मानवक चैत्य स्तम्भ है। (वह स्तम्भ) नीचे चौबीस करोड़ अंश[1] वाला तथा ऊपर साढ़े बारह करोड़ अंश वाला है।

(१९७) (मानवक चैत्य स्तम्भ पर) फलक हैं उन फलकों पर खूँटियाँ है और उन खूँटियों पर वज्रमय सींके लटक रहे हैं, उन सींकों में डिब्बे हैं, उनमें जिन भगवान् की अस्थियाँ हैं, ऐसा प्रज्ञप्त है।

(१९८) मानवक चैत्य स्तम्भ की पूर्व दिशा में आसन तथा पश्चिम दिशा में शय्या है। शय्या की उत्तर दिशा में ऊँचा इन्द्र ध्वज है।

(१९९) इन्द्रध्वज की पश्चिम दिशा में चोप्पाल नामक शस्त्र भण्डार है, जहाँ प्रमुख स्फटिक मणियों एवं शस्त्रों का खजाना रखा हुआ है।

(२००) वहाँ जिन-मन्दिर में वेदियों पर जिनदेव की एक सौ आठ प्रतिमाएँ हैं और उनके सम्मुख एक सौ आठ घण्टे हैं। प्रत्येक जिन प्रतिमा के दोनों पार्श्वों में दो चँवरधारी प्रतिमाएँ हैं।

(२०१) शेष सभाओं के मध्य में सर्वाधिक सुन्दर मणि-मय पीठिकायें हैं, उन पर बहुमूल्यवान् आसन हैं। उपपात सभा में भी (सुधर्मा-सभा की तरह) शय्या है।

(२०२) वहाँ द्वार-मण्डपों के द्वार परिमाण वाले मुखमण्डप, प्रेक्षागृह, ह्रद तथा आठ स्तूप हैं।

(२०३) बीस (योजन) ऊँचे तथा आधा योजन विस्तार वाले मानवक चैत्य स्तम्भ पर आधा योजन बाहर निकले हुए महेन्द्रध्वज तथा इन्द्रध्वज हैं।

(२०४) जिनवृक्षों, सुधर्मा सभाओं तथा चैत्य गृहों पर जो पीठिकाएँ हैं (वे) चार योजन मोटी तथा आठ योजन लम्बी-चौड़ी हैं।

---

१. 'अंश' माप विशेष को कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसा चउँ ४ आयामा, बाहल्लं दोण्णि २ जोयणा तेसिं ।
सव्वे य चेइयदुमा अट्ठेव ८ य जोयणुव्विद्धा ॥२०५॥

छ ६ ज्जोयणाइं विडिमा उव्विद्धा, अट्ठ ८ होंति वित्थिण्णा ।
खंधो वि उ जोयणिओ, विक्खंभोव्वेहओ कोसं ॥२०६॥

नगरीए उत्तरेणं नवेव खलु जोयणाण लक्खा उ ।
अरुणोदगे समुद्दे गंतूणं पंच आवासा ॥२०७॥
पढमे सयंपभे चेव १ तत्तो खलु होइ पुप्फकेऊ य २ ।
पुप्फावत्ते ३ पुप्फप्पभे ४ य पुप्फुत्तरे पासे ५ ॥२०८॥

अग्गमहिसी–परिसाणं चेव तहा नगरीओ होंति अग्गमहिसीणं ।
सामाणियासुराणं तावत्तीसाण तिण्हं च–परिसाणं ॥२०९॥

सोमणसा उ सुसीमा सोम-जमाणं तु रायहाणीओ ।
बारससहस्सियाओ, बाहिं वट्टा रयणचित्ता ॥२१०॥

सिवमंदिरा उ चोद्दससहस्सिया सा भवे उ वरुणस्स ।
सोलससहस्सिया वइरमंदिरा सा नलस्स भवे ॥२११॥

अवेरणं अणियाणं, चउद्दिसिं होइ आयरक्खाणं ।
बारससहस्सियाओ, बाहिंवट्टा रयणचित्ता ॥२१२॥

अरुणस्स उत्तरेणं बायालीसं भवे सहस्साइं ।
ओगाहिऊण उदहिं सिलनिचओ रायहाणीओ ॥२१३॥
वेरोयणपभकंते १ सयक्कऊ २ वुच्चए सहस्सक्खे ३ ।
एगसहस्से४ य तहा मणोरमे ५ पंचमे भणिए ॥२१४॥

परिसाणं चेव तहा नयरीओ होंति अग्गमहिसीणं ।
सामाणियासुराणं तावत्तीसाण तिण्हं च–परिसाणं ॥२१५॥

सोमणसा उ सुसीमा सोम-जमाणं तु रायहाणीओ ।
चोद्दससहस्सियाओ, बाहिं वट्टा रयणचित्ता ॥२१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२०५) शेष पीठिकाओं की लम्बाई-चौड़ाई चार योजन तथा मोटाई दो योजन है। (वहाँ स्थित) समस्त चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊँचे हैं।

(२०६) (चैत्यवृक्षों की) शाखाएँ छह योजन ऊँची तथा आठ योजन विस्तीर्ण हैं, (इन वृक्षों के) स्कन्ध भाग की मोटाई एक योजन है और वे जमीन में एक कोस गहरे हैं।

(२०७-२०८) चमरचंचा नगरी की उत्तर दिशा में अरुणोदक समुद्र में नौ लाख योजन जाने पर ये पाँच आवास हैं—(१) स्वयंप्रभ, (२) पुष्पकेतु, (३) पुष्पावर्त, (४) पुष्पप्रभ तथा (५) पुष्पोत्तर।

(२०९) अग्रमहिषियों की तरह ही अग्रमहिषी-परिषदा को भी नगरियाँ होती हैं। तैंतीस सामानिक देवों की तीन परिषदें होती हैं।

(२१०) सोमनसा, सुसीमा तथा सोम-यमा नामक राजधानियाँ बारह हजार (योजन) विस्तार वाली हैं, वे रत्न चित्रित तथा बाहर से वर्तुलाकार हैं।

(२११) वहाँ वरुणदेव के चौदह हजार कल्याणकारी आवास हैं तथा नल देव के सोलह हजार वज्रमय आवास हैं।

(२१२) इसके बाद बाहरी वर्तुल पर पश्चिम दिशा में अनीकों (सैनिकों) के और चारों दिशाओं में अंगरक्षकों के रत्न चित्रित बारह हजार (आवास) हैं।

(२१३-२१४) अरुण समुद्र में उत्तर दिशा की ओर बयालीस हजार (योजन) जाने पर शिला (चट्टानों) के नीचे वैरोचन-प्रभाकान्त, सत्यकेतु, सहस्राक्ष, एकसहस्र और मनोरम—इन पाँच इन्द्रों की पाँच राजधानियाँ हैं।

(२१५) अग्रमहिषियों की तरह ही परिषदों की भी नगरियाँ होती हैं। तैंतीस सामानिक देवों की तीन परिषदें हैं।

(२१६) सोमनसा, सुसीमा और सोम-यमा नामक राजधानियाँ चौदह हजार (योजन) विस्तार वाली हैं, वे रत्न चित्रित तथा बाहर से वर्तुलाकार हैं।[1]

१. ज्ञातव्य है कि इन तीनों राजधानियों को पूर्व गाथा क्रमांक २१० में बारह हजार योजन विस्तार वाली बतलाया गया है। दो हजार योजन का यह अन्तर विचारणीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवरेण य अणियाणं, चउद्दिसिं होंति आयरक्खाणं ।
बारससहस्सियाओ, बाहिं वट्टा रयणचित्ता ॥२१७॥

सिवमंदिराउ सोलससहस्सिया सा भवे उ अरुणस्स ।
अट्ठारसहस्सी वइरमंदिरा सा णलस्स भवे ॥२१८॥

धरणस्स नागरण्णो सुहवइपरियाए दक्खिणे पासे ।
गंधवईपरियाओ भूयाणंदस्स उत्तरओ ॥२१९॥
उच्चत्तेण सहस्सं १०००, सहस्समेगं १००० च मूलवित्थिण्णा ।
अद्धट्ठमा ७५० उ मज्झे, उवरिं पुण होंति पंच सए ५०० ॥२२०॥

दो २ चेव जंबुदीवे, चत्तारि ४ य माणुसुत्तरनगम्मि ।
छ ६ च्चाऽरुणे समुद्दे, [1]अट्ठ ८ य अरुणम्मि दीवम्मि ॥२२१॥

असुराणं नागाणं उदहिकुमाराण होंति आवासा ।
अरुणोदए समुद्दे, तत्थेव य तेसि उप्पाया ॥२२२॥

दीव-दिसा-अग्गीणं थणियकुमाराण होंति आवासा ।
अरुणवरे दीवम्मि उ, तत्थेव य तेसि उप्पाया ॥२२३॥

चोयालसयं १४४ पढमिल्लुयाए पंतीए चंद-सूराणं ।
तेण परं पंतीओ चउरुत्तरियाए वुड्ढीए ॥२२४॥

जो जाइं सयसहस्साइं वित्थडो सागरो व दीवो वा ।
तावइयाओ तहियं पंतीओ चंद-सूराणं ॥२२५॥

॥ दीवसागरपण्णत्तिपइण्णयं सम्मत्तं ॥

●

१. अट्ठ य रुयगम्मि दीवम्मि इति सर्वासु प्रतिषु पाठः । अनागमिकोऽयं पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२१७) इसके बाद बाहरी वर्तुल पर पश्चिम दिशा में अनीकों (सैनिकों) के और चारों दिशाओं में अंगरक्षकों के रत्न चित्रित बारह हजार (आवास) हैं।

(२१८) वहाँ अरूण देव के सोलह हजार कल्याणकारी आवास हैं तथा नल देव के अठारह हजार वज्रमय आवास हैं।[1]

(२१९-२२०) दक्षिण दिशा में नागकुमार धरणदेव की सुखवती तथा उत्तर दिशा में नागकुमार भूतानन्द देव की गन्धवती नामक राजधानियाँ हैं, ये एक हजार योजन ऊँची, मूल में एक हजार योजन विस्तीर्ण, मध्य में साढ़े सात सौ योजन विस्तीर्ण तथा ऊपर में पाँच सौ योजन विस्तीर्ण हैं।

(२२१) इसीप्रकार जम्बूद्वीप में दो, मानुषोत्तर पर्वत में चार तथा अरूण समुद्र में देवों के छः (आवास हैं) और उन्हीं में उनको उत्पत्ति होती है।

(२२२) असुरकुमारों, नागकुमारों एवं उदधिकुमारों के आवास अरुणोदक समुद्र में हैं और उन्हीं में उनकी उत्पत्ति होती है।

(२२३) द्वीपकुमारों, दिशाकुमारों, अग्निकुमारों और स्तनितकुमारों के आवास अरूणवर द्वीप में हैं और उन्हीं में उनकी उत्पत्ति होती है।

(२२४) (पुष्करवर द्वीप के ऊपर) एक सौ चौवालीस चन्द्र और एक सौ चौवालीस सूर्यों की पंक्तियाँ हैं, इसके आगे चन्द्र-सूर्यों की पंक्तियों में चार गुणा वृद्धि होती है।

(२२५) जो द्वीप और समुद्र जितने लाख योजन विस्तार वाला होता है वहाँ उतनी ही चन्द्र और सूर्यों की पंक्तियाँ होती हैं।

●

---

१. ज्ञातव्य है कि पूर्व गाथा क्रमांक २११ में वरूण देव के चौदह हजार कल्याणकारी आवास तथा नलदेव के सोलह हजार वज्रमय आवास कहे गये हैं। दो-दो हजार आवासों का यह अन्तर विचारणीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. परिशिष्ट

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति प्रकीर्णक की गाथानुक्रमणिका

गाथा	क्रमांक
अ	
अगुणत्तीस सहस्सा सत्तेव	३२
अग्गमहिसी-परिसाणं	२०९
अभिसेक्का-ऽलंकारिय-	१८९
अमोहे सुप्पबुद्धे य	१२३
अरुणस्स उत्तरेणं	२१३
अलंबुसा मीसकेसी	१३४
अवरुत्तररइकरगे	६७
अवरेण अंजणो जो	५४
अवरेण य अणियाणं	२१७
अवरेणं अणियाणं	२१२
असुराणं नागाणं	२२२
अंजणगपव्वयाण उ	४१
अंजणगपव्वयाणं	३८
इ	
इलादेवी सुरादेवी	१३२
ई	
ईसाणदेवरन्नो जाओ	१००
उ	
उच्चत्तेण सहस्सं अड्ढाइज्जे	५९
उच्चत्तेण सहस्सं सहस्समेगं	२२०
उव्विद्धा वीसं उग्गया	२०३
ऊ	
ऊसे य संसिया भद्दे	१४

गाथा	क्रमांक
ए	
एएणेव कमेणं [च] अंत-	९६
एएणेव कमेणं वरुणस्स	९२
एएणेव कमेणं सोमस्स	९४
एएसिं कूडाणं उस्सेहो	९,७९
एकत्तीस सहस्सा छच्चेव	४९
एकत्तीस सहस्सा छच्चेव	६०
एक्कासि एगनउया	५८
एक्केक्कीबाहाए दाराणं	१८०
एगं च सयसहस्सं वित्थिण्णाओ	६४
एगं च सयसहस्सं वित्थिण्णाओ	४३
एगं च सयसहस्सं वित्थिण्णो	१७६
एगं चेव सहस्सं छलसीयं	१२,८२
एगं चेव सहस्सं पंचेव	११,८१
एगा जोयणकोडी छव्वीसा	२१
एगासिइ कोडीणं	२४
एगासि एगनउया	२६
एत्तो एक्केक्कस्स उ	१०४,१५१
एत्तो एक्केक्कस्स उ सयसहस्सं	६१
एयाओ दक्खिणेणं हवंति	१३१
एयाओ पच्छिमदिसासमासिया	१३३
एया दिसाकुमारी कहिया	१३५
एया पुरत्थिमेणं रुयगम्मि	१२९
एवं ईसाणस्स वि	१५५
एसेव जिणघरस्स वि	१९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमांक
ओ	
ओगाहित्ताणमहे चत्तालीसं	१७५
क	
कणगे कंचणगे तवण	११९
कविसीसया य नियमा	१७९
कुंडलनगस्स (? कुडलवरस्स)	८७
कुंडलवरस्स बाहिं छसु	१०२
कोंडलवरस्स मज्झे	७२
ग	
गंतूणं वणसंडा चउरो	१८२
च	
चत्तारि जोयणसए····उ	१६९
चत्तारि जोयणसए····उ	७५
चत्तारि य चउवीसे	४
चत्तारि सहस्साइं चउवीसं	११६
चंचाए बहुमज्झे	१८४
चित्ता य चित्तकणगा	१४७
चुलसीइ सहस्साइं	२७
चोयालसयं पढमिल्लुयाए	२२४
छ	
छज्जोयणाइं विडिमा	२०६
ज	
जन्नामा देवीओ····। ईसाण	१०१
जन्नामा देवीओ····। सक्कस्स	९९
जन्नामा से देवी	१०९
जंबुद्दीवाहिवई अणाढिओ	१५६
जत्थिच्छसि विक्खंभं	२८
जा उत्तरेण सोलस	८८
जिणदुम-सुहम्म-चेइय-	२०४
जिणदेवछंदओ जिणवरम्मि	२००
जो अवरदक्खिणे रइकरो	६५
जो उत्तरअंजणगो	५६
जो जाइं सयसहस्साइ	२२५
जो दक्खिणअंजणगो	५२
जो पुव्वद्दक्खिणे रइकरगो	६२
जोयणसयमायामा	४०
जोयणसहस्सियाणं	१३८
जोयणसाहस्सीया एए···।दिसा-	१४३
जोयणसाहस्सीया एए···।विज्जु-	१४६
जोयणसाहस्सीया रुयगवरे	१३६
त	
तत्तो य महापउमा	१०७
तस्स य नगुत्तमस्स	९०
तस्सुवरि माणुसनगस्स	५
तासुप्परिं महिदज्झया	१९४
तिदिसि होंति सुहम्माए	१९०
तिन्नेव जोयणसए	१०, ८०
तिसीसे पंचसीसे य	८५
तीसं च सयसहस्सा	१९
तीसं चेव सहस्सा	३०
तेगिच्छि दाहिणओ	१७४
तेण परं दीवाणं	१६३
तेवट्ठं कोडिसयं	२५
तेसिं पुरओ मुहमंडवा	१९१
थ	
थिरहियय मउयहियए	८६
थूभाण होंति पुरओ	१९३
द	
दक्खिणपुव्वेण रयणकूडा	१६
दसकोडि सहस्साइं	१११
दस चेव जोयणसए	७४
दस चेव सहस्सा खलु	११४
दस बावीसाइं अहे	३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमांक
दामड्ढो हरिवारण	१५९
दारपमाणा चउरो	१८३
दारप्पमाणसरिसो	१८६
दीव-दिसा-अग्गीणं	२२३
दीवाहिवईण भवे	१६५
देवकुरु उत्तरकुरा	६३
दो कोडिसहस्साइं	७१
दो चेव जंबुदीवे	२२१
ध	
धरणस्स नागरण्णो	२१९
न	
नगरीए उत्तरेण	२०७
नर-मगर-विहग-वालग-	३९
नव चेव सहस्साइं चत्तारि	३१
नव चेव सहस्साइं पंचेव	२९
नवमे य सिलप्पवहे	८
नंदिसेणे अमोहे य	१५
नंदुत्तरा य नंदा	१२८
नाणारयणविचित्ता अणोवमा-	१२२
नाणारयणविचित्ता अणोवमा-	१२४
नाणारयणविचित्ता उज्जोवंता	१२०
नाणारयणविचित्ता उज्जोवेंता	१२६
प	
पउमवरवेइयाए	१८५
पउमुत्तर नीलवंते	१४४
पढमा उ सयसहस्सा	१०५
पढमा उ सयसहस्से	१५२
पढमे सयंपमे चेव	२०८
पत्तेयं पत्तेयं सिहरतले	५१
पन्नासं पणुवीसं	१७८
पभे य सुप्पभे चेव	१५८
परिसाणं चेव तहा	२१५
पलिओवमट्ठिईया एएसुं	१२७
पलिओवमट्ठिईया नागकुमारा	८४
पलिओवमं दिवड्ढं	१४१
पहरणकोसो इंदज्झयस्स	१९९
पंचेव य कोडीओ	२२
पंचेव सहस्साइं	३३
पागारपरिक्खित्ता सोहंते	४५
पायारो नायव्वो	१७७
पासायस्स उ पुव्वुत्तरेण	१८८
पियदंसणे पभासे	१५७
पुक्खरणीण चउदिसिं	४४
पुक्खरवरदिवड्ढं	१
पुव्वाइआणुपुव्वी	१५३
पुव्वुत्तररइकरगे	६९
पुव्वेण अट्ठ कूडा	११८
पुव्वेण अयलभद्दा	९१
पुव्वेण असोगवणं	४६
पुव्वेण उ वेरूलियं	१३७
पुव्वेण तिण्णि कूडा	६
पुव्वेण नंदिसेणा	५७
पुव्वेण य वेरूलियं	१३९
पुव्वेण सोत्थिकूडं	१४२
पुव्वेण होइ नंदा	४२
पुव्वेण होइ भद्दा	५३
पुव्वेण होइ वरुणा	९३
पुव्वेण होइ विजया	५५
पुव्वेण होइ विमलं	१४५
पुव्वेण होइ सोमा	९५
पुव्वेण होंति कूडा	७६
पुव्वेणं तु विसाला	९७
पेच्छाघराण पुरओ	१९२
फ	
फलया तहियं नागदंतया	१९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमांक
फलिहे रयणे भवणे	१२१
ब	
बत्तीस सया बत्तीस उत्तरा	१७१
बहुमज्झदेसे पेढिय	१९६
बायालीस सहस्सा	१६७
बायालीस सहस्से	७३
बाराणं विक्खंभो	१८१
बावन्ना बायाला	११०
भ	
भद्दा य सुभद्दा या	१५४
भिगंग-रूइल-कज्जल-	३७
भूया भूयवडिंसा	६६
म	
मज्झे होइ चउण्हं	८९
मणिप्पभे मणिहंसे य	१६१
मणिप्पभे य मणिहिये	७८
माणवगस्स य पुव्वेण	१९८
मुहमंडव पेच्छाहर	२०२
र	
रयणप्पहा य रयणा	७०
रयणमओ पउमाए	१७२
रयणमुहा उ दहिमुहा	४८
रयणस्स अवरपासे	१७
रुयगवरस्स उ बाहिं	१४९
रुयगवरस्स य मज्झे	११२
रुयगस्स उ उस्सेहो	११३
रुयगाओ समुद्दाओ	१६६
ल	
लच्छिमई सेसमई	१३०

गाथा	क्रमांक
व	
वइरपभ वइरसारे	७७
वड्ढंति एगपासे	३६
वासाणं च दहाणं	१६४
विक्खंभपरिक्खेवो	२०
विक्खंभेणंजणगा	३५
विजए य वेजयंते	१२५
विजया य वेजयंती	१०६
विज्जूयकुमारीणं दक्खिणे	१४८
वित्थिण्णो पणुवीसं	१७३
वीसं जोयणकोडी	२३
वेरुलिय मसारे खलु	७
वेरोयणपभकंते	२१४
स	
सक्कस्स देवरण्णो जाओ	९८
सक्कस्स देवरण्णो तायत्तीसाण	१०८
सक्कस्स देवरण्णो तायत्तीसा	१०३
सक्कस्स देवरण्णो सामाणा	१५०
सत्तरस एक्कवीसाइं जोयण	२
सत्तरस एक्कवीसाइं जोयण	१६८
सत्तरस एक्कवीसाइं पएसाणं	१७०
सत्तेव जोयणसए	८३
सत्तेव जोयणसया	१३
सत्तेव सहस्सा खलु	११५
सयमेगं पणुवीसं	१८७
सव्वरयणस्स अवरेण	१८
सव्वुत्त (? सव्वट्ठ) मणोरह	१६२
सव्वेसिं तु वणाणं	४७
संखदलविमलनिम्मलदहिघण	५०
संखवरे दीवम्मि य	१६०
सिवमंदिरा उ चोद्दससहस्सिया	२११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमांक	गाथा	क्रमांक
सिवमंदिरा उ सोलससहस्सिया	२१८	सोमणसा य सुसीमा एया	६८
सिहरतलम्मि उ रूयगस्स	११७	सोमणसा उ सुसीमा····बारस-	२१०
सुरूवा रूवावई	१४०	सोमणसा उ सुसीमा····चोद्दस-	२१६
सेससभाण उ मज्झे	२०१	सोलस चेव सहस्सा सत्तेव	३४
सेसा चउ आयामा	२०५		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ सूची

१. **अभिधान राजेन्द्र कोश** : श्री विजय राजेन्द्र सूरिजी–रतलाम।

२. **उत्तराध्ययनसूत्र** : सम्पादक मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)।

३. **चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक** : अनु० सुरेश सिसोदिया (आगम, अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर)।

४. **जीवाजीवाभिगमसूत्र** : सम्पादक मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)।

५. **जैन बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन** : डॉ० सागरमल जैन (प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर)।

६. **जैन लक्षणावली** : सम्पादक बालचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री (वीर सेवा मन्दिर प्रकाशन, दिल्ली (भाग १–३)।

७. **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश** : जिनेन्द्र वर्णी (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली) (भाग १–४)।

८. **तिलोयपण्णत्ति** : (यतिवृषभ) सम्पादक आदिनाथ उपाध्याय (जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर)।

९. **नन्दीसूत्र** : सम्पादक मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)।

१०. **नन्दीसूत्र चूर्णि** : (देववाचक)—सम्पादक मुनि पुण्यविजय (प्राकृत टेक्सट् सोसायटी, वाराणसी)।

११. **नन्दीसूत्र वृत्ति** : (देववाचक)—सम्पादक मुनि पुण्यविजय (प्राकृत टेक्सट् सोसायटी, वाराणसी)।

१२. **नियमसार** : (कुन्दकुन्द)—हिन्दी अनु० परमेष्ठीदास (साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग, श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, जयपुर)।

१३. **पइण्णयसुत्ताइं** : सम्पादक मुनि पुण्यविजय (श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई) (भाग १–२)।

१४. **पाक्षिकसूत्र** : देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. **प्रज्ञापनासूत्र** : सम्पादक मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर) (भाग १–३)।

१६. **भगवती आराधना** : (शिवार्य)—सम्पादक कैलाशचन्द्र शास्त्री (जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर) (भाग १–२)।

१७. **मूलाचार** : (वट्टकेर) सम्पादक कैलाशचन्द्र शास्त्री (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली) (भाग १–२)।

१८. **राजप्रश्नीयसूत्र** : सम्पादक मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)।

१९. **लोकविभाग** : सम्पादक बालचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री (जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर)।

२०. **विशेषावश्यकभाष्य** : (जिनभद्र) सम्पादक पण्डित दलसुख मालवणिया (ला० द० भा० सं० विद्या मन्दिर, अहमदाबाद)।

२१. **वियाहपण्णत्तिसुत्ताइं** : सम्पादक पं० बेचरदास दोशी (श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई)।

२२. **समयसार** : (कुन्दकुन्द) सम्पादक डॉ० पन्नालाल (श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला प्रकाशन, वाराणसी)।

२३. **समवायांगसूत्र** : सम्पादक मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)।

२४. **सूर्यप्रज्ञप्ति** : सम्पादक मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)।

२५. **स्थानांगसूत्र** : सम्पादक मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)।

२६. **षट्खण्डागम** : सम्पादक हीरालाल जैन (जैन साहित्योद्धार फण्ड, अमरावती)।

२७. **श्रावक प्रतिक्रमणसूत्र** : (अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर)।

२८. **श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह** : (अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर) (भाग १–८)।

२९. **हरिवंशपुराण** : (जिनसेन) सम्पादक पन्नालाल जैन (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी)।

३०. **ज्ञाताधर्मकथाङ्ग** : सम्पादक मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्थान-परिचय

आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० के १९८१ के उदयपुर वर्षावास की स्मृति में जनवरी १९८३ में स्थापित किया गया। संस्थान का मुख्य उद्देश्य जैनविद्या एवं प्राकृत के विद्वान् तैयार करना, अप्रकाशित जैन साहित्य का प्रकाशन करना, जैनविद्या में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों को अध्ययन की सुविधा प्रदान करना, जैन संस्कृति की सुरक्षा के लिए जैन आचार, दर्शन और इतिहास पर वैज्ञानिक दृष्टि से ग्रन्थ तैयार कर प्रकाशित करवाना एवं जैन विद्या-प्रसार की दृष्टि से संगोष्ठियाँ, भाषण, समारोह आदि आयोजित करना हैं। यह श्री अ० भा० सा० जैन संघ की एक मुख्य प्रवृत्ति है।

संस्थान राजस्थान सोसायटीज एक्ट १९५८ के अन्तर्गत रजिस्टर्ड है एवं संस्थान को अनुदान रूप में दी गयी धनराशि पर आयकर अधिनियम की धारा ८० (G) और १२ (A) के अन्तर्गत छूट प्राप्त है।

जैन धर्म और संस्कृति के इस पुनीत कार्य में आप इस प्रकार सहभागी बन सकते हैं—

(१) व्यक्ति या संस्था एक लाख रुपया या इससे अधिक देकर परम संरक्षक सदस्य बन सकते हैं। ऐसे सदस्यों का नाम अनुदान तिथिक्रम से संस्थान के लेटरपैड पर दर्शाया जाता है।

(२) ५१,००० रुपया देकर संरक्षक सदस्य बन सकते हैं।

(३) २५,००० रुपया देकर हितैषी सदस्य बन सकते हैं।

(४) ११,००० रुपया देकर सहायक सदस्य बन सकते हैं।

(५) १,००० रुपया देकर साधारण सदस्य बन सकते हैं।

(६) संघ, ट्रस्ट, बोर्ड, सोसायटी आदि जो संस्था एक साथ २०,००० रुपये का अनुदान प्रदान करती है, वह संस्था संस्थान-परिषद् की सदस्य होगी।

(७) अपने बुजुर्गों की स्मृति में भवन निर्माण हेतु व अन्य आवश्यक यंत्रादि हेतु अनुदान देकर आप इसकी सहायता कर सकते हैं।

(८) अपने घर पर पड़ी प्राचीन पाण्डुलिपियाँ, आगम-साहित्य व अन्य उपयोगी साहित्य प्रदान कर सकते हैं।

आपका यह सहयोग ज्ञान-साधना के रथ को प्रगति के पथ पर अग्रसर करेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org